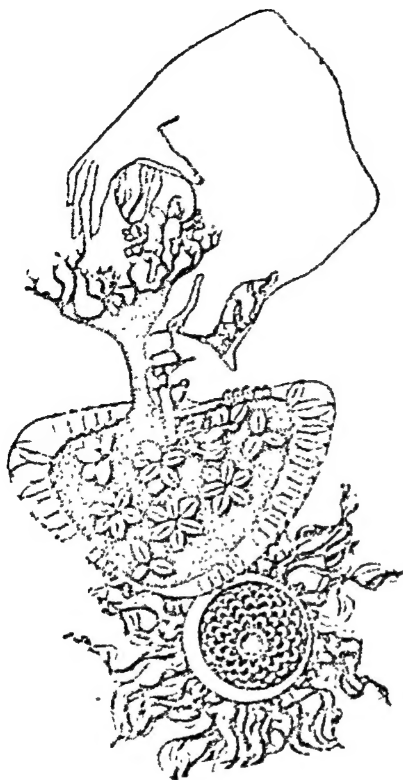


सन्मार्ग प्रकाशन
दिल्ली-110007

कगार और फिसलन

विमल मित्र

अनु० रंगनाथ राकेश

कहानी जो भी हो लेकिन अन्त तक जो कहानी मन को बाँधे रहे, मूल्य उसी का है। हमारे दु:खों और कष्टों की तो कोई सीमा नहीं है। लेकिन यदि किसी कहानी को पढ़कर थोड़ी देर के लिए भी हम अपने दुख-दर्द को भूल सकें तो यह उस कहानी की सबसे बड़ी उपलब्धि होगी। पर फिर भी कहानी के कर्तव्य की इतिश्री यहीं नहीं हो जाती।

महान् कहानी वही है जो मनुष्य को अपना रूप पहचानने में सहायता करे। अत: महान् कथा का आरम्भ वहीं होता है जहाँ मनुष्य के बाह्य लोक का अन्त हो जाता है। महान् कथा मनुष्य के आत्म-स्वरूप के दर्शन के द्वारा विश्व-रूप को भी प्रकट करती है। इसीलिए वह साहित्य के अन्तर्गत आती है। अन्ना कैरीनीना ने अपने को टॉल्सटाय के साहित्य में पहचाना है। इसीलिए लज्जा और घृणा से उसने आत्म-विनाश किया, आत्मघाती बनी और आत्महत्या करने के बाद विश्व-साहित्य में अमर हो गई। मनुष्य के भीतर जो देवता छिपा रहता है उसी का आविष्कार करना साहित्य का कार्य है। शरत्चन्द्र के साहित्य में इसके प्रमाण भरे पड़े हैं। मनुष्य पशु भी नहीं है देवता भी नहीं है। देवत्व और पशुत्व के मिश्रण से जो जीव बनता है उसी का नाम है मनुष्य। इसीलिए मनुष्य के भीतर जो विचित्रता है वह देवता में भी नहीं, पशु में भी नहीं। तभी तो साहित्य में मनुष्य को लेकर इतना अधिक विश्लेषण किया गया है। वैयाकरण का विश्लेषण नहीं, साहित्य के अध्यापक का भी विश्लेषण नहीं, साहित्य का विश्लेषण है रस-भाष्य। यही रस-भाष्य साहित्य की चिरस्थायी सम्पत्ति है। राज्य बदल जाते हैं, राजतन्त्र बदल जाते हैं, युग बदल जाता है, रुचि बदल जाती है लेकिन इस रस-भाष्य का रूप शाश्वत है, यह नहीं बदलता, यह कभी नहीं बदलता।

जब मैंने थ्रांउ आप्टिया की कहानी सुनी थी, तब एक ऐसी ही रस-भाष्य वाली कहानी लिखने की इच्छा मेरी भी हुई थी। लेकिन केवल इच्छा ही नहीं, भय भी हुआ था।

सभी कहानियाँ लिखते समय भय नहीं लगता। लेकिन आज उसकी कहानी लिखते समय सचमुच ही डर रहा हूँ। बदनामी का डर मुझे नहीं

है। जब समुद्र की लहरों पर खाट बिछाकर सोया हूँ, तब भला ओस की बूंदों से क्या भय ? भय तो दूसरे ही कारण से है। तितली का रूप तितली की ही तरह होगा, ऐसी हठवादी मूर्खता में मेरा विश्वास नहीं। शेर यदि शेर की तरह न भी हो तो भी मुझे आपत्ति नहीं है। लेकिन तितली को देखते समय यदि मन में यह लगे कि हम शेर देख रहे हैं अथवा शेर को देखते समय यदि यह लगे कि हमने तितली देखी है, तब तो मैं कहूँगा कि कलाकार की ड्राइंग में ही भूल है। तब मैं उसे कलाकार नहीं कहूँगा।

कहानी लिखते समय मैं अपनी आँखों के सामने अपने चरित्रों और पात्रों के चेहरे स्पष्ट देखता हूँ। बहुत-से आदमियों के नाम के साथ उनके चेहरे में कोई समता नहीं होतीलेकिन वह उनके नामकरण करने वालों की भूल है। पर कहानी लेखक जब अपनी कहानी के चरित्रों का नामकरण करते हैं तब उसमें भूल होने पर मुझे बड़ा दुःख होता है।

बाल्जाक एक बार कहानी लिखते समय बड़ी कठिनाई में पड़ गये। वे कोई अच्छा-सा नाम नहीं खोज पा रहे थे। अक्सर नाम की जरूरत पड़ने पर वे घूमने के लिए निकल पड़ते थे और लोगों के घर के बाहर लगी नेमप्लेटों को देखकर, अपनी पसन्द के मुताबिक नाम चुन लेते थे। लेकिन इस बार एक कलाकार के नाम की जरूरत पड़ी थी, और नाम किसी भी प्रकार नहीं मिल पा रहा था। अन्त में एक नाम उन्हें बहुत पसन्द आया। वाह, यह आदमी जरूर ही कलाकार होगा, कितना सुन्दर नाम है, उन्होंने सोचा।

उनका एक मित्र पास ही था। उससे उन्होंने कहा—जाओ तो भाई, जरा भीतर जाकर पता लगाओ कि यह आदमी क्या करता है? ···मित्र ने भीतर जाकर पता लगाया और बाहर आकर बोला—यह आदमी दर्जी है।

बहुत दुःख हुआ बाल्जाक को। माँ-बाप का दिया हुआ इतना सुन्दर नाम पाकर भी वह आदमी एक दर्जी बनकर अपने दिन काट रहा है। इतना सुन्दर जिसका नाम हो उसे तो वायलिन बजाना चाहिए था, चित्रकार होना चाहिए था, संगीतज्ञ होना चाहिए था। इसको सिलाई-मशीन चलानी पड़ रही है।

बहुत दुःख हुआ बाल्जाक के मन में।

इसके बाद हठात् अपने मित्र को बुलाकर उन्होंने कहा—कोई परवाह नहीं, भगवान् ने भले ही उसको मारकर रख दिया हो लेकिन मैं उसे प्रसिद्ध करके ही छोडूँगा, मैं उसे एक कलाकार बनाकर ही मानूँगा।

और अन्त में हुआ भी वही। 'दी अननोन मास्टरपीस' कहानी में वही

दर्जी एक कलाकार होकर सदा-सदा के लिए अमर हो गया ।

मिस थॉफ आण्ड्रिया का नाम सुनकर मेरे मन में भी ठीक वैसा ही हुआ था । पारसी महिला, तीस साल की उम्र, और फिर दो हजार रुपये मासिक वेतन । सब कुछ सुनकर मैंने थॉफ आण्ड्रिया के सम्बन्ध में मन-ही-मन एक धारणा बना रखी थी । सोचा था, देखने में सुन्दरी होगी । लम्बी-पतली भौंवें, सिल्क की साड़ी के आँचल के ऊपर एक ब्रोच लगा हुआ । खूब स्ट्रिक्ट होगी । मन में दया-माया कुछ नहीं होगी । बस सिर्फ काम, काम और काम । लेकिन मि० सेनगुप्त ने कहा—नहीं, ठीक उसका उल्टा···

···वह कैसा ?

मि० सेनगुप्त ने कहा—अद्भुत सुन्दरी । सारे आफिस के लोगों को प्यार करती थी, स्टाफ़ के लोग भी उसे अत्यन्त प्यार से देखते थे, मिस थॉफ आण्ड्रिया का नाम लेते ही फॉस्टर जॉनसन कम्पनी के ऑफिस के लोग खुश हो उठते थे ।

फॉस्टर जॉनसन कम्पनी बम्बई की एक नामी-गिरामी पब्लिसिटी फर्म है । मिस थॉफ आण्ड्रिया उसी फर्म की बिजनेस एक्जिक्यूटिव है । रोजाना जब खुद अपनी कार चलाकर मिस थॉफ आण्ड्रिया आफिस आती, तब गेट के दरबान से लेकर दो तल्ले और तीन तल्ले तक का सारा स्टाफ उसे देखते ही कुर्सी छोड़कर उठ खड़ा होता था । मिस थॉफ आण्ड्रिया अगर आफिस में अपनी चेयर पर आकर नहीं बैठती तो जैसे आफिस ही सूना-सूना-सा लगता । सभी लोगों को ऐसा लगता कि जैसे सारा आफिस भाँय-भाँय कर रहा है । किसी का मन काम में नहीं लगता था । काम का आउट-पुट कम हो जाता था ।

जूनियर पार्टनर मिस्टर जॉनसन इस बात को खूब समझते थे । उन्हें पता था कि फर्म के क्लाएण्ट मिस थॉफ आण्ड्रिया की गैरहाजिरी को महसूस कर रहे हैं । भारत की बड़ी-बड़ी फर्मों के रिप्रेजेण्टेटिव्स आकर मिस थॉफ आण्ड्रिया को न देखने पर जैसे प्रसन्न नहीं हो पाते थे । कुछ अजीब-सा लगता उन्हें । वे बातें भी कुछ कम करते, काम भी कुछ कम देते ।

मिस थॉफ आण्ड्रिया कभी भी नौकरी से गैरहाजिर नहीं होती थी । सुबह ठीक नौ बजे उनकी कार फॉस्टर जॉनसन कम्पनी के गैरेज में प्रवेश करती । तब वह लिफ्ट में चढ़कर सीधे अपनी चेयर पर जा बैठती थी ।

अनुपस्थित होने का कोई भी अवसर मिस थॉफ आण्ड्रिया का नहीं आया । अपने घर में भी कोई झंझट नहीं । अकेली जान और नौकर-नौकर, आया बस यही ।

मिस्टर सेनगुप्त काफी उम्र-दराज आदमी हैं।

मैंने पूछा—क्या आपने उस फॉस्टर जॉनसन कम्पनी में पहले नौकरी है।

मिस्टर सेनगुप्त ने कहा—नहीं।

—तब क्या आप मिस श्रॉफ आणिटया को जानते थे? उसके सम्बन्ध इतनी जानकारी आपको कैसे हुई?

मि० सेनगुप्त को मैं बहुत दिनों से जानता था। दस वर्ष पहले वे इंगलैण्ड से लौटकर आए थे। वहीं एक बंगाली तरुणी से उनका परिचय हुआ था। उसी को उन्होंने अपनी पत्नी बना लिया। यह बहुत दिनों की बात है। कई बार उनके साथ भेंट हुई है। उनकी स्त्री के साथ भी भेंट हुई है। पति-पत्नी दोनों ही बहुत सुखी हैं। कम-से-कम बाहर से देखने पर तो मुझे ऐसा ही लगा। और मेरी धारणा गलत नहीं है, इसका सबूत भी मुझे कई बार मिला।

हमारे ही मुहल्ले में मि० सेनगुप्त ने मकान बनवाया है। मामूली मकान नहीं। दिमाग़ लगाकर, इंजीनियर के द्वारा प्लान करवा कर, तब मकान बनवाया है। उनकी पत्नी अब नौकरी नहीं करतीं। करने की ज़रूरत भी नहीं है। पर यह भी तो हो सकता है कि मिस्टर सेनगुप्त अब नहीं चाहते हों कि बीवी नौकरी करे।

एक दिन हठात् मिस्टर सेनगुप्त के साथ मेरा परिचय हो गया। मुहल्ले के लड़कों की एक मीटिंग में मैं सभापति था और मिस्टर सेनगुप्त प्रमुख अतिथि थे। वहीं सूत्रपात हुआ था, उसी सूत्रपात से धीरे-धीरे घनिष्ठता हो गई।

मिस्टर सेनगुप्त उस जाति के आदमी हैं जिन्हें बाहर से देखने पर लगता है कि ये अहंकारी होंगे। लगता है कि दूसरे आदमी के साथ बात-चीत करने में भी शायद इन्हें घृणा होती है। लेकिन भीतर-भीतर किसी आदमी के साथ बात करने की उनकी इच्छा होती है, सच्चे आदमी को पाकर ये जैसे बच जाते हैं। बाहर के कोट-पैन्ट, नेक-टाई दरअसल उनकी नकली पोशाक है। यह छद्म-वेश किसी-किसी के लिए सारे जीवन-भर जैसे सच हो उठता है। उस छद्म-वेश को वे ताउम्र नहीं छोड़ पाते। अगर कहा जाए तो यह छद्म-वेश ही उनका स्वभाव बन जाता है।

लेकिन मिस्टर सेनगुप्त इतने बे-झिझक आदमी होंगे, मुझे छोड़कर इस मुहल्ले का कोई भी आदमी नहीं जान सका। इसका कारण था कि मुहल्ले के सभी आदमियों के साथ हो-हुल्लड़ और गप-शप करना मिस्टर सेनगुप्त के लिए सम्भव नहीं था।

मिसेज सेनगुप्त भी अपने पति की ही तरह बे-मिजाज, बिना लाग-लपेट की औरत थीं। दोनों ही हिन्दी के साथ बैठकर ही-हुल्लड़ नहीं कर पाते थे, लेकिन वे जो कुछ कर पाते थे वह उनके चरित्र की एक विशेष सम्पत्ति थी। मैं बीच-बीच में यदि उनके घर नहीं जाता तो सचमुच ही उनको आन्तरिक कष्ट होता। उस दुःख को मन ही वे दूसरों की तरह मुँह खोलकर नहीं कहते थे लेकिन मैं उसे समझ लेता था।

क़ायदे-क़रीने से सजा हुआ ड्राइंग-रूम, एक छोटे काठ के टब में कैक्टस। दीवारों पर लटकती हुई पेन्टिंग्स। घर सजाने में भी जैसे एक विशेषता हो। सिर्फ घर सजाने में ही नहीं, उनकी पोशाक और उनके चाल-चलन में भी एक आभिजात्य भरा रहता।

मिस्टर सेनगुप्त ने एक दिन कहा था—आप तो केवल हिस्ट्री के इन्टरप्रिटेशन को ही लेकर उपन्यास लिखते हैं—

—जब जैसा लिखना अच्छा लगता है वैसा ही लिखता हूँ। मैं किसी की गुलामी तो करता नहीं—मैंने कहा था।

—लेकिन किसी कैरेक्टर को लेकर नहीं लिखते क्या?

बात मेरी समझ में नहीं आई।

मैंने पूछा—कैरेक्टर माने?

मिस्टर सेनगुप्त बोले—जैसे हिस्ट्री का इन्टरप्रिटेशन होता है, कैरेक्टर का भी वैसा ही इन्टरप्रिटेशन होता है।

—वह तो होता ही है।

मिस्टर सेनगुप्त ने कहा था—मान लीजिए, ऐसे बहुत से कैरेक्टर संसार में हैं, जिन्हें देश-काल के भूगोल में सीमाबद्ध नहीं किया जा सकता, जो कैरेक्टर इण्डिया में भी सच्चे हैं, अमेरिका में भी और पेरु में भी। बंगाली, गुजराती, पारसी, आसामी, मराठी और तेलुगु लोगों के बीच भी सच्चे हैं—अर्थात् जिसे कहते हैं ह्यूमन डाक्यूमैण्ट। मैंने कहा—उसे भी मैंने लिखा है एक समय। मेरे पाठक कहते थे कि मैं शायद स्त्री-चरित्र के सम्बन्ध में स्पेशलिस्ट हूँ। जितने भी तरह के नारी-चरित्र हैं, उन्हें लेकर मैंने किताब लिखी थी—उसका नाम दिया था कन्यापक्ष—

—अब नहीं लिखते क्या?

—नहीं।

—क्यों?

मैंने कहा—लोग समझने लगे कि मैं उसके अलावा और कुछ लिख ही नहीं सकता। मैं जो कुछ लिख सकता था, उसका प्रमाण देने के लिए एक दूसरी किताब लिखी और उसका नाम दिया था प्रथम पुरुष, उन्

रित्र पुरुष थे।

स्टर सेनगुप्त ने कहा—तो क्या अब नारी-चरित्र को लेकर नहीं
ा, ऐसा कुछ सोच लिया है?

मैंने कहा—यह भला कैसे कह सकता हूँ?

मिस्टर सेनगुप्त ने कहा—अगर लिखें तो एक फ़ीमेल-कैरेक्टर मैं
को दे सकता हूँ।

मैंने कहा—ठीक है, दीजिए।

असल में मिस श्रॉफ़ आण्टिया के सम्बन्ध में यही मेरा प्रथम ज्ञान
या। मिस्टर सेनगुप्त ने ही एक दिन मुझे मिस श्रॉफ़ आण्टिया के सम्बन्ध
में सब कुछ खोलकर बताया। और मैंने भी सोचकर देखा कि अब तक
नारी-चरित्र पर जो भी लिखा है वह ठीक तो है लेकिन मिस श्रॉफ़
आण्टिया के चरित्र पर तो कभी नहीं लिखा।

मिस श्रॉफ़ आण्टिया के सम्बन्ध में जो कुछ जानना सम्भव था,
मिस्टर सेनगुप्त को वह सब-कुछ पता था। बचपन में धन, ऐश्वर्य किसी
भी चीज़ का अभाव नहीं था उसे। पारसी-समाज के उच्च वंश की लड़की
थी। केवल लड़की ही नहीं, शिक्षिता लड़की।

आण्टिया के पिता के पास तब अगाध ऐश्वर्य था।

आण्टिया कहती—रुपये-पैसे के लिए मुझे कभी भी कोई अभाव नहीं
हुआ…जो लोग सुनते, वे सभी अभावग्रस्त आदमी थे। कुछ युवक, कुछ
युवतियाँ। सभी नौकरी करने के लिए फ़ॉस्टर जॉनसन कम्पनी के आफ़िस
में आये थे। सभी लोगों ने एक दिन मैट्रिक पास किया, इण्टरमीडिएट
पास किया, ग्रेजुएट हुए और उसके बाद फ़ॉस्टर जॉनसन कम्पनी के
आफ़िस में नौकरी करने आये। रुपये के लिए नौकरी करने आए। तनख्वा
दो सौ से तीन सौ होगी, तीन सौ से चार सौ। अन्त में दो हज़ार मही
वेतन भी हो सकता है मिस श्रॉफ़ आण्टिया की तरह।

लेकिन मिस श्रॉफ़ आण्टिया को रुपये-पैसे की इतनी ज़रूरत
थी। माता-पिता पारसी समाज के इतने बड़े आदमी थे कि बेशुमार रु
पैसा और बहुत से मकान छोड़कर मरे और उस सारे रुपये-पैसे की
मात्र उत्तराधिकारिणी हुई मिस श्रॉफ़ आण्टिया।

रुपये-पैसे की कोई विशेष बात नहीं। रुपया किसी के पास र
किसी के पास नहीं रहता। किसी को उत्तराधिकार के रूप में मिल
है तो कोई अपने परिश्रम से रुपया कमाता है। पर लोग अवाक्
दूसरे ही कुछ कारणों से।

सभी लोग कहते हैं—लेकिन भाई मिस थॉरू ने शादी क्यों नहीं की ?

कोई कहता इतना रुपया है इसीलिए विवाह नहीं हुआ।

लेकिन कौन जानता है, सच्चाई क्या है। जैसे रुपया नहीं रहने पर लड़कियों की शादी नहीं होती वैसे ही रुपया रहने पर भी शादी नहीं होती।

मिस्टर सेनगुप्त ने कहा—मिस थॉरू आस्टिया की शायद ठीक ऐसा ही हुआ था। आस्टिया के साथ कोई भी युवक मिलना-जुलना चाहता तो वह सोचने लगती कि वह उसके रुपयों के लिए ही प्यार दिखाने का बहाना कर रहा है। उसका रूप, उसका यौवन, उसका स्वभाव, उसका चरित्र, यह सब कुछ नहीं। उसका रुपया ही उसके लिए सबसे बड़ा रोड़ा सिद्ध हुआ'''इससे बड़ी ट्रैजिडी'''इससे बड़ी विडम्बना भला क्या हो सकती है किसी युवती के जीवन में !

सुबह से लेकर शाम तक, और तो और काफी रात गये तक रुपये-पैसे को लेकर ही आस्टिया का वक्त गुजरता। समाचार हिल के ऊपर आस्टिया की जो इतनी बड़ी बिल्डिंग है, उसके जो बड़े-बड़े फ्लैट हैं, उनकी आमदनी क्या कम है ? एक-एक फ्लैट का मासिक किराया था सात-आठ सौ रुपये। ऐसे ही थे बीस फ्लैट, बीस गुना आठ सौ-कितना हुआ, जोड़ो तो !

और रुपया-पैसा होने का मतलब है झंझट होना। अर्थात् जरूरत से ज्यादा रुपया होना। वकील, एटार्नी, एकाउण्टेण्ट और टेनेण्ट को लेकर ही जीवन विपन्न हो जाने की बात ! आस्टिया जब सत्रह की थी, उसी समय से अथाह रुपये-पैसे और इतनी बड़ी सम्पत्ति की मालकिन हो गयी।

उसके रिश्तेदार और अपने लोग सभी धनी लोग थे।

लेकिन शादी के मामले में रुपया ही आस्टिया के जीवन में बाधक बनकर आ खड़ा हुआ। इसीलिए उसका अपना कोई न रहा।

थोड़े से नौकर-चाकर, नौकरानी और आया को लेकर ही मिस थॉरू आस्टिया का जीवन शुरू हुआ था। यह बहुत दिन पहले की घटना है। तब मिस थॉरू आस्टिया का मेरे साथ कोई परिचय भी नहीं था।

—आपके साथ क्या मतलब ? आप पहचानते थे मिस थॉरू आस्टिया को ?

मिस्टर सेनगुप्त ने कहा—नहीं, न मैं उसे पहचानता था, न मैंने उसे कभी देखा ही, मैंने तो सिर्फ सुना है।

इसके बाद मिसेज सेनगुप्त की ओर निहार कर, तनिक हँस बोले—इन्हीं से सुना है।

—आप ? आप भी उन्हें पहचानती थीं क्या ?

मिसेज सेनगुप्त मन्द-मन्द मुस्कराने लगीं।

पति की ओर देखकर उन्होंने कहा—लेकिन तुम वे सब बातें क्यों दुहराना चाहते हो ?

मिस्टर सेनगुप्त ने कहा—क्या हुआ, मैं तो एक कहानी लेखक को बता रहा हूँ और किसी को तो नहीं बता रहा।

कहानी लेखक होने के बाद ऐसी अनेक बातें, अनेक घटनाएँ सुनने को मिली हैं। बहुत-से लोगों की गोपनीय कहानियाँ। जो किसी से नहीं कही जा सकतीं, जिन्हें कहना उचित भी नहीं। लोगों को विश्वास था कि मुझे बताने में उन्हें कोई भय नहीं है। कभी मैंने, उन कहानियों को सुना और कभी उन्हें लेकर कहानी भी लिखी। लेकिन कई बार न सुना, न लिखा।

इस बार भी नहीं लिखता और श्रॉफ़ आण्टिया ऐसी महिला भी नहीं जिसे लेकर सचमुच कोई कहानी लिखी जा सके। लेकिन यह चरित्र कुछ दूसरे प्रकार का है। अर्थात् इतने दिन तक जो कुछ लिखा है, मिस श्रॉफ़ आण्टिया उसमें नहीं आती। मिस श्रॉफ़ इस युग की केवल लड़की ही नहीं फ़्रस्ट्रेशन भी है।

केवल रुपयों-पैसों की बहुतायत ही नहीं, मिस श्रॉफ़ आण्टिया के पास यौवन भी अतुल था और जिसके पास प्रचुर यौवन हो, उसके पास अगाध सम्पत्ति का होना उचित नहीं।

जिस उम्र से युवक युवतियों के सम्पर्क में आना चाहते हैं, वह उम्र एक दिन मिस श्रॉफ़ आण्टिया की भी थी और उस उम्र की स्वाभाविक दुर्बलता भी थी उसके शरीर और मन में। बम्बई के भद्र समाज के युवक उसके पास मिलने-जुलने आते थे। बातचीत में वे कहते—चलिये न सिनेमा चलें।

मिस श्रॉफ़ आण्टिया कहतीं—जायेंगे ?

—चलिये न, ख़ूब रिलैक्स किया जायेगा।

—आज ही चलेंगे ?

—क्यों आपका कोई ख़ास काम है आज ?

—नहीं, काम तो नहीं है लेकिन कौन-सी पिक्चर ?

युवक बोलते—वो तो नहीं जानता, सिनेमा-हाउस जाकर ही देखेंगे कौन पिक्चर चल रही है—

कुछ-कुछ इच्छा भी होती मिस श्रॉफ़ आण्टिया की। लेकिन न जाने क्या सोचकर दुविधा में पड़ जाती। सोचती क्यों ये लोग उसे सिनेमा ले जाना चाहते हैं ? इतना आग्रह क्यों है इन लोगों का ? क्या कारण है,

उसका रूप-सौन्दर्य या रुपया ? हो सकता है दोनों ही हों। वह उन लोगों की ओर देखती तो उसे ऐसा लगता जैसे उन लोगों की दृष्टि से लोभ टपक पड़ रहा है।

मिस श्रॉफ आण्टिया को जैसे वह लील लेना चाहते।

इसके बाद कहतीं—नहीं, आज रहने दो—

—क्यों ? क्या हुआ आपको ?

मिस श्रॉफ आण्टिया कहतीं—नहीं, आज तबीयत ठीक नहीं है,—कल जाऊँगी—

फिर वह कल के लिए तैयार भी होतीं, साड़ी भी पहनतीं, गहना भी पहनतीं, चेहरे, गालों, होठों पर कॉसमेटिक्स भी लगातीं, आईने के सामने खड़ी होकर अपने चेहरे को घुमा-फिराकर भी देखतीं। लेकिन जब समय आता तब जैसे उन्हें कुछ भी अच्छा नहीं लगता। तब साड़ी खोल फेंकतीं, गहना खोल फेंकतीं, जूड़ा खोलकर केशों को बिखेर देतीं। चेहरे-गालों-होठों पर का कॉसमेटिक्स पोंछ देतीं और अपने आपसे पूछतीं—क्या होगा सिनेमा जाकर ? क्या होगा इतना सज-धजकर दूसरे के मन को भुलावा देकर ? हर कोई केवल लेना चाहता है। देना, कोई कुछ नहीं चाहता। बस, केवल लेना। मेरा रुपया, मेरा यौवन, मुझे। मुझसे अधिक मेरे रुपये के प्रति, मेरे ढलते यौवन के प्रति, उन लोगों की निगाहें हैं।

ठीक समय पर शाम को कार लेकर एक युवक आता है। कार से उतरकर सीधे धड़धड़ाता हुआ सीढ़ियों पर चढ़कर वह ज्यों ही ड्राइंग रूम में पहुँचता है, तभी मिस श्रॉफ आण्टिया का नौकर आकर खबर देता है—मेम साहब नहीं जायेंगी हुजूर।

युवक बेचारा जैसे हताश, निराश-सा हो उठता है।

पारसी समाज का विशिष्ट युवक है यह।

बचपन से ही ऐश्वर्य और प्रतिष्ठा के बीच पला है। नहीं चाहने पर भी सब कुछ पा जाना उसका स्वभाव बन गया है।

लेकिन नौकर की बात सुनकर जाने कैसा अधमरा-सा हो गया बेचारा!

पॉकेट से सिगरेट की सुनहरी डिब्बी निकाल कर एक सिगरेट सुलगा लिया उसने। मन की निराशा को दूर करने के लिए सिगरेट के कश पर कश लगाकर धुआँ छोड़ने लगा।

इसके बाद एक बार फिर पूछा उसने—मेम साहब हैं किधर ?

नौकर ने कहा—हुजूर, मेम साहब की तबीयत खराब है।

इसके बाद भला और क्या बात हो सकती है। और खड़े रहने से भी क्या लाभ ? फिर धड़धड़ाता हुआ सीढ़ी से नीचे उतरकर अपनी कार

र जा बैठा ।

मिस श्रॉफ़ आण्टिया को लिखाने-पढ़ाने के लिए घर पर ट्यूटर ाती । गाना-बजाना सिखाने के लिए ट्यूटर आती । पियानो सीखना मन श्रॉफ़ आण्टिया की इच्छा थी । एक दिन बहुत बड़ा आदमी बनकर ूब ऊँचा उठना होगा । ऊँचे उठने का मतलब कई तरह का हो सकता है । कोई ऊँचा उठता है रुपये-पैसे में, कोई अपनी शक्ति और क्षमता में, कोई स्वास्थ्य में तथा अन्य दूसरी चीजों में ।

—तुम किस लाइन में जाना चाहती हो ?

—क्या मतलब ?

—तुम्हारी लाइफ की ऐम्बिशन क्या है ?

ट्यूटर की बात से मिस श्रॉफ़ आण्टिया अपने मन में कुछ खोजती, कुछ टटोलती । क्या बनना चाहती है वह ? क्या होना उचित है ? क्या होने पर अच्छा होगा । क्या हो जाने पर सब प्रशंसा करेंगे । लेकिन सोच-सोचकर भी कुछ निर्णय नहीं कर पाती थी मिस श्रॉफ़ आण्टिया । सब कुछ तो है उसके पास । रुपया है, रूप है, जवानी है, तब उसे और क्या चाहिए ?

....

—बड़ी कठिनाई में पड़ गयी हूँ !

बातचीत के लिए किसी को अपने पास न पाकर ट्यूटर को ही अपने दुःख की बात बतानी पड़ती ।

—क्यों ? क्या हुआ तुम्हें ?

—सभी लोग मेरी ओर बहुत ज्यादा अटेन्शन देते हैं ?

—क्यों, किसलिए अटेन्शन देते हैं ?

आण्टिया कहती—मैं क्या जानूं । मैं समझ नहीं पाती इतनी लड़कियाँ रहने पर भी क्यों लोग मेरी ही तरफ इतना ध्यान देते हैं ?

ट्यूटर कहती—दैट इज़ बैड ।

—लेकिन इसमें मेरा क्या दोष है । मुझे साथ लेकर लोग सिनेमा जाना चाहते हैं, मुझे साथ लेकर कार ड्राइव करना चाहते हैं, मुझे लेकर जुहू के किनारे घूमना चाहते हैं—

ट्यूटर कहती—खूब सावधान रहना होगा तुम्हें । यू आर वेरी यंग । दिस वेरी एज इज़ डेंजरस । इस उम्र में स्लिप करने का चान्स होता है ।

—लेकिन वे सब मेरी ओर इतना अटेन्शन क्यों देते हैं, मिस ? मे पास क्या है ?

—तुम्हारे पास क्या नहीं है ?

—मेरे रुपयों का लोभ ?

—वे सब जानते हैं। तुमसे शादी करने के बाद उन्हें बहुत रुपया तो मिलेगा ही, इसके अलावा वे तुम्हें भी पा जायेंगे। तुम्हें पाने के लिए भला किस यंगमैन की इच्छा नहीं होगी ? इसके बाद मिस ने एक बार आष्टिया की ओर ताककर पूछा—तुम्हारी एज क्या है ?

—सेवेनटीन।

—यही तो है असली उम्र, इस उम्र, में खूब सावधानी से रहना चाहिए लड़कियों को। बी वेरी केयरफुल।

थॉफ कहती किसी-किसी दिन जब मैं अकेली घूमने जाती हूँ, तब कई लोग मुझे फ़ॉलो करते हैं।···मैं देखती हूँ कि मुझे लेकर उनमें से कई लोग गॉसिप भी करते हैं।

—मोस्ट नेचुरल।

—क्यों ? मोस्ट नेचुरल क्यों ?

—वाह, यू आर ए ब्यूटिफुल गर्ल। तुम्हारी तरह ब्यूटिफुल लड़कियाँ कितनी हैं ? [illegible] कितनी लड़कियों की है ? तुम्हारी तरह [illegible] कितनी लड़कियों का है यहाँ ?

[illegible]

चारों ओर से सतर्कता के उपदेश सुन-सुनकर मिस थॉफ़ आष्टिया उसी सत्रह वर्ष की उम्र में अत्यन्त सचेतन हो उठी थी। और जब सत्रह से सत्ताइस में पहुँची तब भी सतर्क होकर चारों ओर देखती रही। इसके बाद सत्ताइस से जब सैंतीस में पहुँची, तब भी वही बात। सभी लोग केवल अटेन्शन देते उसकी ओर। उसके चेहरे, गाल, होंठों की ओर, उसके यौवन की ओर, उसके रुपये-पैसों की ओर।

ऑफ़िस के क्लाएण्ट—फ़ॉस्टर जॉनसन कम्पनी के बड़े से बड़े क्लाएण्ट।

कोई-कोई तो एक लाख, दो लाख रुपये का काम कम्पनी को देते। गुजराती फ़र्म वाले मिस थॉफ़ आष्टिया के चेम्बर में आते और पाउण्ड, शिलिंग-पेंस की बातें करते-करते एकाएक आष्टिया की ओर ताकने लगते।

कभी-कभी तो वह बोल ही पड़ती।

कहती—मेरे चेहरे की ओर ऐसे क्यों ताक रहे हैं मिस्टर देसाई ?

मिस्टर देसाई का चेहरा लज्जा से लाल हो उठता।

वे कहते—मुझे क्षमा करिएगा मिस थॉफ़ मैं जरा अन्यमनस्क हो उठा था, आई वाज़ अन-माइण्डफुल।

इसके बाद वे लोग स्वाभाविक रूप से बातें नहीं कर पाते थे। जितने

भी पुरुष क्लाइण्ट मिस श्रॉफ़ आण्टिया के पास आते, सभी बिज़नेस में कुछ-न-कुछ भूल कर जाते और यह भूल जान-बूझकर होती। मिस श्रॉफ़ आण्टिया के साथ मोल-भाव करने में पुरुषों को हारना ही पड़ता। फ़ाइव-परसेण्ट की जगह टेन-परसेण्ट पर दस्तख़त कर जाते। इससे फ़ॉस्टर जॉनसन कम्पनी के बम्बई-आफ़िस को खूब लाभ होता साथ ही श्रॉफ़ आण्टिया को भी लाभ होता। क्रमशः उसकी तनख़्वाह बढ़ने लगी।

फ़ॉस्टर जॉनसन कम्पनी के आफ़िस में जब आण्टिया आयी थी तब उसकी पोस्ट थी थर्ड एक्जिक्यूटिव। तनख़्वाह थी पाँच सौ रुपये महीना। इसके बाद हुई वह सेकण्ड एक्जिक्यूटिव। तब उसकी तनख़्वाह बढ़कर हो गयी एक हज़ार रुपये। अन्त में फ़र्स्ट एक्जिक्यूटिव। तनख़्वाह हो गयी दो हज़ार रुपये—टू थाउजेण्ड।

श्रॉफ़ आण्टिया का नाम कम्पनी के हेड आफ़िस में, इंगलैण्ड पहुँच गया। जब उन्होंने आण्टिया को देखा तब समझे कि लड़की कितनी तेजस्विनी है। श्रॉफ़ आण्टिया की बेबी-स्टुडिबेकर बम्बई की सड़कों पर जब पचास मील की गति से चलती, तब उसकी कार में बैठा हुआ एलेशियन कुत्ता भी डर के मारे थर-थर काँपने लगता। अगर कहा जाये तो मिस श्रॉफ़ आण्टिया के दो ही शौक़ थे। पहला था कुत्ता और दूसरा था कार चलाना। कट-आउट खोलकर कार ड्राइव करना आण्टिया की अपनी ही एक अदा थी। आवाज सुनते ही लोग समझ जाते कि आण्टिया की बेबी-स्टुडिबेकर जा रही है। उसके भीतर जीभ निकाले हुए एलेशियन कुत्ता बैठा हुआ था।

उसी अदा का नशा एक बार बहुत बढ़ गया तो कोर्ट में जाकर फ़ाइन दे आयी। पचास रुपये फ़ाइन। लेकिन फ़ाइन देकर आते समय ही पुलिस ने फिर गाड़ी का नम्बर नोट कर लिया।

मजिस्ट्रेट ने वार्निंग दी।

कहा—इस बार कोर्ट में आने पर एक सौ रुपये जुर्माने के देने होंगे।

लेकिन इससे भी आण्टिया का शौक़ कम नहीं हुआ। पता नहीं कितनी बार उसने फ़ाइन दिया है, कितनी बार पुलिस-मजिस्ट्रेट के पास उसे जाना पड़ा है, इसका कोई हिसाब नहीं है आण्टिया की जिन्दगी में।

फ़ॉस्टर जॉनसन कम्पनी के जनरल मैनेजर ने पूछा था एक बार··· तुम इतना रैश ड्राइव क्यों करती हो आण्टिया?

—स्लो-लाइफ़ मुझे अच्छी नहीं लगती मिस्टर पैटर्सन।

जो लाइफ़ स्लो है, उसके प्रति आण्टिया का कोई आकर्षण नहीं था। लाइफ़ अगर फ़ास्ट न हो तो भला जीने में मजा ही क्या है? अतुल

यौवन, और प्रचुर सम्पत्ति के साथ आण्टिया जैसे पृथ्वी को उलट-पुलट कर अपना अस्तित्व सिद्ध करना चाहती थी।

उन दिनों बम्बई में इतनी भीड़ नहीं होती थी। एक घर यहाँ, एक घर वहाँ। इन पर भी आण्टिया के मन में होता कि जैसे बम्बई में बहुत भीड़ है। क्यों नहीं हुआ और बड़ा शहर? क्यों नहीं हुए ये रास्ते और चौड़े? क्या सत्तर मील की स्पीड से कार नहीं चलायी जा सकती? क्यों न अरब सागर के ऊपर गाड़ी चलाकर, मैं नहीं दौड़ सकती?

गैरेज में कार रखकर आण्टिया जब घर लौटती, तब उसकी सारी देह से पसीना झरता। उसी अवस्था में वह सीधी बाथरूम में चली जाती बाथ-टब के हाट-वाटर में अपने को डुबो देती और बाथरूम के बाहर सुनाई पड़ता आण्टिया का सस्वर गीत। फिर घण्टे भर बाद जब वह निकलती तब उसका चेहरा, आँखें, गाल, गला, और पूरी देह जैसे लाल हो उठती। मानो इतनी देर तक वह अपने ही साथ युद्ध करती रही थी, बाथरूम के भीतर।

मिस्टर सेनगुप्त ने कहा—यह सब तो हुआ मिस श्रॉफ आण्टिया के जीवन का प्रारम्भिक इतिहास यानी भूमिका अर्थात् आण्टिया की जिन्दगी का प्रोलॉग असली कहानी शुरू होने के पहले का चैप्टर।

लोग कहते—आण्टिया की गाड़ी के कारण उसका कोई लवर नहीं बन सका।

कुछ लोग कहते—आण्टिया की गाड़ी के कारण उसे कोई पति नहीं मिलता—पारसी समाज के जो बड़े लोग थे, उनके कानों में जब यह बात गई तो उन लोगों ने सोचा कि कुछ उपदेश वगैरह देने से लड़की सुधर जायेगी। उनके माता-पिता को वे पहचानते थे। पारसी समाज में हर आदमी एक दूसरे को जानता-पहचानता है। आपस में कहीं भेंट होने पर भी मिस श्रॉफ आण्टिया की बातचीत होती।

बहुत से लोग कहते—अरे आण्टिया, उसकी बात मत कहो, वह तो खतम हो गयी है।

कुछ लोग कहते—लेकिन उसकी शादी होना जरूरी है।

कोई कहता—भला उससे शादी कौन करेगा? वैसा कोई लड़का बम्बई में है?

सच ही तो, ऐसी लड़की को भला कौन सँभालेगा? जो भी उसको सँभालने जायेगा वह समझेगी कि मेरे रुपयों के ही लोभ में आया है। इसके अलावा उसका एल्सेशियनकुत्ता। उसकी वह बेबी-स्टुडिबेकर कार।

यह सब भला कौन सँभालेगा ?

जो लड़की सत्तर मील की स्पीड से स्टुडिवेकर कार चलाती है, वह आदमी को किस स्पीड से चलायेगी, इसका हिसाब कौन करेगा ?

ऑफ़िस में भी श्रॉफ़ आण्टिया लोगों को चरखे की तरह चलाती। फॉस्टर जॉनसन कम्पनी का आफ़िसर था थर्ड फ्लोर पर। लिफ़्ट पर चढ़-कर कॉरिडोर से होते हुए सीधे आफ़िस के भीतर जाना पड़ता। वहीं पर बैठी रहतीं चीनी गुड़ियों की तरह दो रिसेप्शनिस्ट लड़कियाँ। स्लीवलैस; पेटकटा ब्लाऊज पहने हुई, प्रिण्टेड साड़ी कन्धों पर से लगातार खिसकती हुई। वैसे भी अगर कोई नहीं रहता तब भी टेलीफ़ोन की घण्टी को हिलाती-डुलाती रहतीं, अगर यह नहीं तो वैनिटी बैग से आईना निकालकर अपना चेहरा देखतीं। होंठों पर लिपस्टिक लगातीं, या दोनों हाथों से दायें-बायें जूड़े को जब-तब ठीक करती रहतीं। ये दोनों ऑफिस की शोभा हैं। ऑफिस में जब क्लाएण्ट आते हैं तब ये ही मुस्कराकर उनका स्वागत करती हैं। इसके बाद भीतर टेलीफ़ोन करके मालिकों को खबर देती हैं।

इन सब कम्पनियों में सुन्दर न होने पर नौकरी ही नहीं मिलती। तितली की तरह ऑफ़िस के सामने रोज़ नयी-नयी साड़ियाँ पहनकर ये बैठी रहेंगी। इसके बाद ऑफ़िस की छुट्टी होने के बाद किस होटल में, किसके साथ, कब जाना होगा और रात काटनी होगी, यह भी ऑफिस के भीतर निश्चित हो जाता है।

लेकिन ऐसी लड़कियाँ भी यकायक सुन्न हो उठती हैं। बाहर जूते की आवाज़ सुनते ही समझ जाती हैं कि मिस श्रॉफ़ आण्टिया आ रही है।

मिस श्रॉफ़ आण्टिया जब आती हैं. तब बहुत दूर से ही पता लग जाता है।

—गुड मॉर्निंग।

—मॉर्निंग।

लड़कियाँ विनत भाव से ही नमस्कार करतीं। लेकिन मिस श्रॉफ़ आण्टिया जैसे उस तरफ़ ताकती भी नहीं। उसके पास इतना समय कहाँ। ऊँची एड़ी के जूते से खट-खट शब्द करती हुयी ऑफ़िस के अन्दर जा पहुँचती। चेम्बर में पहुँचते ही चपरासी टेबुल पर की सारी चीजें ठीक-ठाक कर देता, एक ग्लास जल लाकर रख देता।

इसके बाद इलेक्ट्रिक-स्विच दबाते ही युवती स्टेनोग्राफ़र हाजिर हो जाती।

—टेक दिस डिक्टेशन।

यह स्टेनोग्राफ़र युवती ही जैसे इस ऑफ़िस में एक उल्टी-सी चीज़

हो, एक व्यतिक्रम हो।

मैंने पूछा—क्यों ?

मिस्टर सेनगुप्त ने कहा—यकायक जैसे हंसों के झुण्ड के बीच एक बगुला आ बैठा हो। सभी जहाँ स्लीवलेस ब्लाउज पहनती हैं, सभी जहाँ सटाळ वायल की साड़ी पहनकर नाचती-नाचती ऑफिस आती हैं, वहीं यह लड़की मानो बम्बई में फिट नहीं हो पा रही थी।

—यानी नमिता सेन थी विशुद्ध बंगाली युवती। घटनाचक्र के कारण ही आ पड़ी थी बम्बई में।

ऐसा कहकर मिस्टर सेनगुप्त रुक गये।

—नमिता सेन ?

—हाँ, नमिता सेन। सारी बम्बई के वातावरण के बीच नमिता सेन जैसे कहीं फिट नहीं हो पा रही थी।

—क्यों ? मिसफ़िट क्यों ?

—मिस्टर सेनगुप्त ने कहा—देखिए, दरअसल नमिता सेन नौकरी करने के लिए तो आयी नहीं थी बम्बई। वह तो अपने चाचा साथ के बम्बई घूमने आयी थी। चाचा-चाची और छोटी-छोटी चचेरी बहनें। सोचा था होटल में रहकर दो-चार दिनों में घूम-फिरकर शहर देखेंगे, इसके बाद वहाँ से अजन्ता और एलोरा जायेंगे।

यकायक वहीं चाचा की मृत्यु हो गयी।

दूसरी जगह घूमने आकर ऐसी घटना प्रायः नहीं होती। इसीलिए जो डॉक्टर देखने आया था, उसे भी थोड़ी ममता हो आयी थी। रुपया-पैसा जो कुछ साथ था वह सब दवा-दारू में खर्च हो गया। हाथ में अब इतने पैसे भी नहीं थे कि कलकत्ता लौट जाते।

बातों-ही-बातों में उसी डॉक्टर ने थॉक्स आण्टिया को यह सूचना दी थी।

आण्टिया ने कहा—क्या कुछ रुपया देने पर उनका कुछ उपकार हो सकता है ?

—जरूर होगा, लेकिन यदि और कुछ किया जाये तो···डॉक्टर ने कहा।

—नौकरी कर पायेगी उनकी विधवा स्त्री ?

डॉक्टर ने कहा—नौकरी भला कैसे करेगी ? विधवा तो काफी उम्र की है···

—लड़के-लड़कियाँ नहीं हैं ?

—वे सब छोटे-छोटे हैं।

—तब ?

—आखिर नमिता की बात उठी। वह बी० ए० पास थी। अपनी चाची के कहने पर फ़ॉस्टर जॉनसन कम्पनी के आफ़िस में गयी। सारे आफ़िस के बीच नमिता बड़ी बेढब-सी लगी। सभी लोगों की एक तरह की साड़ी, एक तरह का मेकअप। कोई भी फ़र्क नहीं। इन्हीं लोगों के बीच नमिता सेन को जैसे शर्म आने लगी अपने को देखकर।

आण्टिया ने पूछा—क्या पास किया है तुमने? ह्वाट इज़ योर क्वालिफ़िकेशन ?

नमिता ने कहा—मैंने इसी साल कैलकटा यूनिवर्सिटी से बी० ए० पास किया है।

—पहले कहीं नौकरी की है ?

—नमिता ने कहा—नहीं।

—शार्टहैण्ड जानती हो ? टाइपराइटिंग ?

—जानती हूँ।

—कितने रुपये महीने में तुम्हारा गुजारा चल जायेगा ?

इसका क्या उत्तर देती नमिता। उसने कहा—आप जो दे देंगी।

—अच्छा डिक्टेशन लो—

आण्टिया ने नमिता को डिक्टेशन दिया।

—तुम मैरिड हो या अनमैरिड ?

डिक्टेशन लेने में बहुत-सी भूलें कीं नमिता सेन ने। लेकिन आण्टिया को तो दया-ममता कुछ भी नहीं। दुर्दान्त गति से डिक्टेशन दिये जा रही है। बेबी-स्टुडिबेकर कार की तरह आण्टिया की डिक्टेशन की स्पीड भी है। धड़ाधड़ बोलते-बोलते यकायक उसने देखा कि स्टेनोग्राफर तो रो रही है।

—व्हाट···?

'डिक्टेशन' रोककर आण्टिया ने यकायक नमिता की ओर देखा।

—आर यू क्राइंग ? रो रही हो ?

तब मुंह में आंचल ठूंसने पर भी नमिता अपनी रुलाई रोक नहीं सकी।

—ह्वाट हैपेण्ड ?'—

बड़ी विपत्ति में पड़ी मिस थ्रॉफ़ आण्टिया। उसके ही सामने बैठकर एक कैण्डिडेट रो रही है, ऐसी घटना तो आज पहली बार घटी है। बहुत से पुरुष आण्टिया के सामने बैठकर हँसना चाहते थे, रोना चाहते थे। उसके साथ बैठकर हँसने और रोने में अपने को कृतार्थ समझा था उन्होंने,

लेकिन आण्टिया ने उनमें न किसी को भी तरजीह नहीं दी।

पर इस नमिता के मामले में जैसे वह कुछ दूसरी ही तरह की हो गयी है। वह दूसरी तरह का होना इनकी जिन्दगी में पहली बार है।

उसने पूछा—क्या हुआ तुम्हें ?

—बोलो, क्या हुआ हैं ?

मैं अपनी आँण्टी को जाकर क्या कहूँगी ? मेरी चाची को यह जानकर बड़ा कष्ट होगा—

—क्यों, क्यों कष्ट होगा ?

—उन्होंने तो आशा की थी कि यहाँ मेरी नौकरी लग जायेगी।

—लेकिन तुम्हारी नौकरी यहाँ नहीं लगेगी, यह तुमसे किसने कहा ?

—डिक्टेशन लेने में मेरी इतनी भूलें हुई हैं, इतनी तेजी से बोलने पर तो मैं नहीं लिख पाऊँगी।

जो लड़की आज तक अपनी जिन्दगी में किसी के प्रति दया-ममता नहीं दिखा सकी, उसने नमिता के प्रति ममता दिखाई। दया करके नौकरी दी। तनख्वाह डेढ़ सौ रुपये। डेढ़ सौ रुपयों में जैसे खरीद लिया नमिता सेन को। है न आश्चर्यजनक बात !

फॉस्टर जॉनसन कम्पनी के स्टाफ़ के लिए जैसे अनहोनी हो गयी। शेर क्या बकरी को खाना भूल गया है ?

सारा स्टाफ़ कहता—ऐसा कैसे हुआ भाई ?

लेकिन जानता कौन, जो यह सब बताता।

ऑफिस के बाद बड़े साहब अपने चेम्बर से निकलकर लिफ्ट के ज़रिये सीधे नीचे उतर जाते। इसके बाद छोटे साहब जाते। फिर मँझले साहब जाते, फिर सबसे छोटे साहब। लेकिन मिस श्रॉफ़ आण्टिया तब भी काम करती रहती। नमिता को डिक्टेशन देती रहती बहुत रात तक, लेट आवर्ज़ काम नहीं करने पर जैसे ऑफ़िस का बहुत नुकसान हो जायेगा।

बाहर सड़क पर आकर नमिता सेन सीधे चलना आरम्भ करती है। स्टेशन तक जाकर ट्रेन पकड़नी होगी। बहुत देर हो जायेगी। एकाएक पीछे से हार्न सुनकर नमिता सेन ने घूमकर देखा तो पाया कि मिस श्रॉफ़ आण्टिया है।

—कहाँ जाओगी ?

नमिता कहती है – अँधेरी, साढ़े आठ बजे ट्रेन है।

···तुम्हारा घर क्या अँधेरी में है ?

नमिता कहती है···हाँ, चाची वग़ैरह चली गयी हैं, और तो कोई है

नहीं, मैं ही अकेली वहाँ रहती हूँ।

—क्यों, वे क्यों चली गयीं ?

—घर नहीं जातीं तो यहाँ भला कितने दिन पड़ी रहतीं ? हाथ में तो पैसा-कौड़ी भी नहीं था। मैंने ही अपनी तनख्वाह से कुछ पैसे बचाकर चाची को दिये, तब कहीं ट्रेन का भाड़ा जुट पाया।

—तुम्हारे चाचा क्या बहुत पुअर थे ?

नमिता ने कहा—वेरी पुअर ! तीन सौ रुपया महीना पाते थे, एक मर्चेण्ट आफिस में ?

—तीन सौ ओनली ?

मिस ऑफ़ आण्टिया जैसे आसमान से गिर पड़ी। तीन सौ रुपये महीने में भला आदमी अपना काम कैसे चला सकता है ? इतने दिन कैसे चला उसका काम ?

—तुम्हारी तनख्वाह इस समय कितनी है ?

रास्ते में खड़े-खड़े इतनी बातें करना ठीक भी नहीं, सम्भव भी नहीं। बेवी स्टुडिबेकर का दरवाजा खोलकर आण्टिया ने कहा—तुम भीतर आकर बैठो, चलो, मैं तुम्हें स्टेशन तक छोड़ देती हूँ।

नमिता सेन कार में संकुचित होकर बैठ गई।

आण्टिया ने कार फ़ुल स्पीड में छोड़ दी। पचास मील स्पीड में कार दौड़ रही थी।

—तुम्हारी 'पे' कितनी है ? बोली।

—ढाई सौ।

—घर का भाड़ा कितना देना होता है ?

—मैं यह घर छोड़ दूंगी, एक दूसरा घर खोज रही हूँ। इतना बड़ा घर मुझ अकेली के लिए जरूरी नहीं है—

लेकिन तब तक स्टेशन आ गया था।

—यह लो, ट्रेन तो चली गयी।

नमिता ने कहा—नहीं—

—चलो, मैं तुम्हें छोड़ आती हूँ।

नमिता को न जाने कैसी लज्जा प्रतीत हुई। आण्टिया उसकी बॉस है। इस समय दो हजार रुपये तनख्वाह पाती है। जबकि उसे मिलते हैं केवल ढाई सौ। उस घर में वह भला कैसे ले जायेगी अपनी बॉस को।

—चढ़ो, गाड़ी पर चढ़ो। मैं तुमको पहुँचा दूंगी।

नमिता को दुविधा होने लगी।

आप क्यों मेरे लिए इतनी तकलीफ़ करेंगी ? और फिर वह मुहल्ला

भी कुछ अच्छा नहीं है।

—अच्छा नहीं है, इसका मतलब ?

नमिता ने कहा—घर के आसपास जो बस्ती है उसमें छोटे क़िस्म के लोग रहते हैं।

—लेकिन इतनी जगह के बावजूद तुम उस जगह में क्यों रहने गयीं ?

—तब मेरे सिर पर बहुत-सी विपत्तियाँ थीं, उस घर को पाकर मैंने सोचा कि जान बची लाखों पाये, नहीं तो न जाने क्या करना पड़ता।

कार तब तक चल चुकी थी। मिस थ्रॉफ आण्टिया कार चला रही है। पास में ही नमिता बैठी हुई है। कार जैसे उड़ रही है। मिस थ्रॉफ आण्टिया की कार जैसे उड़ती जा रही है। नमिता को बहुत डर लगने लगा। इतनी तेज़ी से भी भला कोई कार चलाना है ?

—तुम्हें डर तो नहीं लग रहा है मिस सेन ?

—सचमुच ही बहुत डर लग रहा है मिस थ्रॉफ।

—मैं और भी तेज़ी से चला सकती हूँ। यह अमेरिकन कार है न ! ज़ोर से न चलाने पर यह गाड़ी ठीक नहीं रहती। धीरे चलाने पर इस कार की सारी बॉडी हिलती रहती है—ठीक आदमी की तरह—

[illegible]

चेहरा था। आज कार चलाते समय यह जैसे कोई दूसरा व्यक्तित्व है। चेहरे, गाल, गले तथा सारी देह पर बूँद-बूँद करके पसीना आ रहा है। कार का स्टीयरिंग ह्वील जैसे किसी मर्द की गर्दन है। जैसे उसको बड़े ज़ोर से जकड़कर पकड़ रखा है उसने, किसी भी तरह नहीं छोड़ेगी। स्टीयरिंग ह्वील को मात न देने पर मिस थ्रॉफ आण्टिया जैसे बच नहीं सकती। नमिता सेन उसी ओर देखने लगी। आण्टिया के उरोजों की उठती-गिरती लहर के साथ स्टीयरिंग ह्वील का स्पर्श हो गया है। जैसे दोनों ही एक दूसरे को आलिंगन में बाँध कर स्तब्ध हो गये हों।

—यहीं पर रुक जाइये।

—यहाँ ? इतने नज़दीक।

—हाँ, यही तो है अँधेरी, यहीं पर है मेरा घर।—

बड़ी अनिच्छा से आण्टिया ने कार को रोका। स्टीयरिंग ह्वील को छोड़ने को जैसे उसका मन ही न कर रहा हो।

—आप तो बड़ी तेज़ कार चलाती हैं ?

आण्टिया ने कहा—मुझे तेज़ चलाना ही अच्छा लगता है।

—लेकिन इतनी तेजी से गाड़ी चलाना क्या सेफ़ है ?
आण्टिया ने कहा—लाइफ इज़ अनसेफ़। और यह कहकर वह हँसने
। इसके बाद डिब्बे से एक सिगरेट निकालकर उसने पीना शुरू कर
। इतनी देर के बाद जैसे आण्टिया का समस्त शरीर, उसके अंग-
ग शिथिल हो चले हों।

—अच्छा, तो मैं चलूं। गुड नाइट मिस, गुड नाइट।

अपने फ्लैट में आकर दरवाज़े को चाभी से खोलने के बाद नमिता
के भीतर चली गयी।

मिस्टर सेनगुप्त ने कहा—यह मिस श्रॉफ़ आण्टिया भी एक तरह का
रेक्टर हैं। जो युवती डेढ़ सौ रुपये में नमिता सेन को ख़रीदकर उसे
गुने दाम में बेच सकती है, जो बहुत से नौकरी पेशे वाली लड़कियों की
कर्ता-धर्ता है, वही इतने लोगों के बावजूद नमिता सेन को ही क्यों अपने
स्टेनोग्राफर के रूप में चुन सकी, यह आज भी रहस्य बना हुआ है। जबकि
पहले ही दिन जो टेस्ट उसने नमिता सेन का लिया था, उस दिन तो
इक्यावन भूलें उसकी टाइपराईटिंग में हुई थीं।

आण्टिया ने कहा था—यहाँ तुम्हारी सर्विस लग पाना डिफ़िकल्ट
है।

और यह सुनकर नमिता जैसे निराशा से टूट गयी थी।

उसने कहा था—आलराइट मिस—

—तुम क्या करोगी ?

नमिता ने कहा था—मेरी तो हैबिट नहीं थी, थोड़ी प्रैक्टिस करने
से सब ठीक हो जायेगा। अगर आप मुझे एक 'चान्स' और दें तो मैं कृतज्ञ
होऊँगी।

—लेकिन इस तरह कितने दिन चलाओगी ? तुम्हारे पास रुपया है ?

—नहीं।

इसके बाद मिस श्रॉफ़ आण्टिया ने वह किया जो उसने कभी नहीं
किया था। अपने बैग से पाँच सौ रुपये कैश निकालकर नमिता की ओर
बढ़ा दिये और कहा—कीप इट।

उसकी चाची वगैरह ने सुना तो उन्हें काठ मार गया। बोलीं—ओ
माँ, क्या कहती है री ! तुझको वैसे ही पाँच सौ रुपया दे दिया ?

इसके बाद तनिक रुककर पूछा था चाची ने—क्यों दे दिया री ?
तूने रुपया माँगा था ?

—नहीं चाची, मैं भला रुपया क्यों चाहूँगी ? चाचा के मरने की

खबर सुनी थी उसने, इसी से दया करके दिया होगा शायद !

—ओह ! इतने भले लोग भी हैं इस पृथ्वी पर। जो भी हो, है तो लड़की ही न। औरत जाति का दुःख औरत ही समझ सकती है, दूसरा भला कौन समझेगा ? माँ, तुम बची रहो, बड़ी उम्र हो तुम्हारी, कल्याण हो तुम्हारा।

चाची पुराने समय की हैं। मन ही मन उन्होंने मिस श्रॉफ आण्टिया के कल्याण की कामना की। भले ही अगाध सम्पत्ति की मालकिन हो, भले ही ढाई हजार रुपये पाने वाली ऑफिसर हो, लेकिन एक गरीब आदमी का दुःख उसने समझा तो। इतनी बड़ी बम्बई में क्या बड़े आदमियों का अभाव है ? लेकिन किसी ने इस गरीब लड़की को जरा-सी बात पर पाँच सौ रुपये नहीं दिये। ऐसा दिल कितने लोगों का होगा !

पर यह सब बहुत पहले की बात है। चाची भी घर चली गई। बेचारी बहनें भी विवाहित होकर अपना घर-द्वार बसाने में लग गयी।

उस दिन उन पाँच सौ रुपयों के द्वारा मिस श्रॉफ आण्टिया ने नमिता को जो उपकृत किया था, वह क्या भूलने की चीज है ? उसके एक महीने बाद फिर एक और चान्स मिला उसे। फिर डिक्टेशन दिया था। इस बार इतनी भूलें नहीं हुई। सिर्फ तीन भूलें हुई। पर इतनी भूलें तो सभी की हो जाती हैं।

तभी से स्टेनोग्राफर की नौकरी करते-करते आज दो साल हो चले हैं नमिता सेन को, इस बम्बई शहर में। इसी मिस आण्टिया के पास एक दिन संसार में आश्रय पाने के लिए उसे नौकरी करनी पड़ी थी लेकिन आज यही नौकरी उसके लिए एक प्रयोजन बन चुकी है। आज वह इच्छा करके भी इस नौकरी को नहीं छोड़ सकती। सारे दिन आफिस में शॉर्टहैण्ड में डिक्टेशन लेकर जब वह ट्रेन पकड़ती है, तब जैसे सारी क्लान्ति उसे आकर घेर लेती है। अंधेरी तक ट्रेन से पहुँचने में आधा घण्टा लगता है। इसके बाद घर आकर, स्नान करके, तैयार होने में सात-आठ बज जाते हैं।

उसी समय आज भी आयी थी।

उस दिन मिस श्रॉफ आण्टिया नमिता को उसके घर छोड़कर जब अपनी कार लेकर अंधेरी से बहुत दूर चली गयी, तो कम्बाला हिल्स के आसपास हठात् उसकी नजर नमिता के बैग पर जा पड़ी। नमिता अपना हैण्डबैग कार में ही भूल गयी थी।

आण्टिया ने एक बार बैग को हाथ से छूकर देखा। उसके बाद उसके मन में खयाल आया कि उसे खोलकर उसके भीतर भी देखे। लेकिन मन ने गवाही नहीं दी। दूसरे का बैग खोलना उचित नहीं। हो सकता है !

कोई जरूरी चीज हो। हो सकता है, ट्रेन का मन्थली टिकट ही हो। कल ऑफ़िस आते समय शायद नमिता को असुविधा होगी। बस, मन में आते ही उसने कार को फिर नमिता के घर की ओर मोड़ दिया। गाड़ी फिर अंधेरी की ओर दौड़ने लगी। फिर वही पचास मील की स्पीड। फिर एकाध घण्टे का समय। और घर लौटकर होगा भी क्या? वही हॉट वाटर का बाथ एक घण्टा भर। उसके बाद तो कोई काम नहीं। तब समय जैसे कटता ही नहीं। फिर अंधेरी पहुंचकर कार का हार्न बजा दिया उसने।

कोई भी उत्तर नहीं।

अंधेरी की इस जगह पर आण्टिया कभी भी नहीं आयी थी। इसके अलावा चारों ओर अन्धकार हो चला था। आस-पास दो-एक दुकानें। टिमटिमाते हुए केरॉसिन लैम्प जल रहे थे। किससे पूछेगी आण्टिया?

रास्ते के एक ओर गाड़ी खड़ी करके आण्टिया बढ़ चली। सुनहरे रंग के जूते में थोड़ा-सा कीचड़ लग गया। पेटीकोट नीचे झूल रहा था, उसमें भी कुछ दाग लग गये। सिल्क की साड़ी का आंचल कन्धे से खिसककर जमीन पर आ गया।

—रॉट।

आण्टिया को गुस्सा चढ़ आया एक लम्हे में। ऐसी अवस्था जीवन में कभी भी नहीं हुई थी उसकी। बचपन से ही कार पर चढ़कर आती रही है वह। शैशव से ही कारपेट के ऊपर चलने का अभ्यास किया है उसने। आज उसी को, इस तरह, यहां, उसी के ऑफिस की स्टैनो के यहां आना पड़ेगा, ऐसी तो कल्पना भी नहीं की थी उसने। ऐसा भी तो हो सकता था कि अपने घर जाकर ड्राइवर या किसी नौकर से बैग भिजवा देती।

मारे घृणा के आण्टिया की नाक-भौंह चढ़ गयीं। सामने ही अंधेरे में कीचड़ के ऊपर पैर रखता हुआ कोई चला आ रहा था।

आण्टिया ने उसी से पूछा—यहां पर मिस सेन किस फ्लैट में रहती हैं?

आदमी अनाड़ी था। कुछ समझ नहीं सका। आफिस में यदि यह आदमी होता तो आण्टिया उसे तुरन्त नौकरी से निकाल देती। ऐसी बेअदबी फॉस्टर जॉनसन नहीं सहता।

—इधर कोई नहीं है? कोई जनाना? दफ्तर में काम करती है?

इतनी देर में वह आदमी कुछ समझ चुका था। उसने फ्लैट की ओर इशारा किया।

मिस श्रॉफ़ आण्टिया किस ओर से भीतर जायेगी। कहां दरवाज़ा है,

कुछ भी तो नहीं समझ सकी वह। आसपास सटे हुए फ्लैट, बिलकुल ही लोअर मिडिल क्लास। लड़के-लड़कियाँ चिल्ल-पों मचा रहे थे।

मिस श्रॉफ आण्टिया को देखकर शायद उन सबों को सन्देह हुआ हो कि यह बहुत बड़ी आदमी हैं। सभी लोग चंचल हो उठे। इस अंधेरी बस्ती में इतने लोग एक-एक रहते होंगे। आण्टिया कभी इसकी कल्पना भी नहीं कर सकी थी। एक बार उसके मन में आया वह लौट चले, लौट चलना ही शायद अच्छा होता। घर लौट जाने पर ड्राइवर अथवा नौकर के हाथ बैग वापिस भिजवा देना ही ठीक रहता।

—किसे चाहती हैं आप ?

—मिस सेन।

—उस तरफ जाइये। पीछे की ओर, ग्राउण्ड फ्लोर पर।

और कुछ नहीं कहना पड़ा। बिलकुल पतली गली से होकर पीछे की तरफ जाने का रास्ता। वह भी अन्धकारपूर्ण। अंधेरे में किसी तरह टटोल-टटोलकर फ्लैट के ठीक सामने आण्टिया पहुँची।

सामने ही एक दरवाजा था। जरा-सा खुला हुआ। भीतर रोशनी। उसी फाँक में दिखाई पड़ा कि मिस सेन किसी के साथ बातें कर रही है। एक मैली साड़ी पहने हुए है। किसके साथ बात कर रही है? लेकिन मिस सेन ने तो कहा था कि उसके घर में कोई नहीं है। तब यह कौन है? किसके साथ बात कर रही है?

—मिस सेन।

बाहर से दिखाई पड़ा कि मिस सेन जैसे चौंक पड़ी हो। आण्टिया के गले की आवाज सुनते ही तुरन्त बाहर चली आयी।

—ओह आप!

—दरवाजा खुलते ही आण्टिया ने देखा कि एक आदमी सामने बैठा है। इतनी देर तक नहीं दिखाई पड़ा था। दोनों ही आमने-सामने बैठकर बातें कर रहे थे। ऐसी हालत में जैसे आण्टिया के आ जाने की आशा नहीं थी उन्हें।

मिस श्रॉफ आण्टिया के भी मन में हुआ कि इस हालत में यहाँ आकर उसने जैसे ठीक नहीं किया। उसे देखकर वह युवक भौंचक्का-सा खड़ा रह गया। कितना मैला और सस्ते किस्म का पैण्ट पहन रखा है। एक टुइल की शर्ट है देह पर। दुबला-पतला। प्रोटीन की कमी मारे चेहरे पर झलक रही थी। और मिस सेन भी कितनी 'अगली, लगी। आफिस में तो जरा सज-धजकर आती है। हो सकता है कि जरा-पाउडर भी लगाती हो। लेकिन यहाँ, इस घर के भीतर मैली साड़ी पहन कर बैठने में कोई ल

नहीं लगती। और यह भी तो हो सकता है कि मिस सेन ने कभी ऐसा सोचा हो न हो कि आण्टिया उसे इस हालत में देख लेगी।

—एकाएक आप ?

—तुम्हारा हैण्डबैग गाड़ी में छूट गया था।

मिस सेन और भी लज्जित हो उठी। खड़ी-खड़ी जैसे परेशान होने लगी।

उसने कहा—छी-छी। आप उस बैग को ही लेकर यहाँ चली आईं। हाथ बढ़ाकर उसने आण्टिया के हाथ से बैग ले लिया। और बोली—आइये, भीतर आइये। खड़ी क्यों हैं ?

भीतर नहीं जाती आण्टिया। ऐसा परिवेश, ऐसे लोअर मिडिल क्लास की बंगाली युवती के फ्लैट के भीतर वह कभी भी नहीं गयी, लेकिन उस युवक को देखकर उसके मन में न जाने कैसा कुतूहल हुआ। मिस सेन का लवर है क्या ? मिस सेन जैसी गरीब लड़की का भी लवर हो सकता है ?

—घर के पास पहुंचकर तुम्हारे बैग पर नजर पड़ी। मैंने सोचा उसके भीतर तुम्हारा रेल का मन्थली टिकट होगा, आइ डोण्ट नो···

—यह होता तो भी क्या, आपने मेरे लिए इतनी तकलीफ क्यों की ?

इसके बाद आण्टिया के पांव पर नज़र पड़ी उसकी तो मिस सेन ने कहा—मुझे बड़ी शर्म लग रही है। आपका जूता खराब हो गया है, आपके पेटीकोट में भी कीचड़ लगी है, साड़ी है, साड़ी भी ख़राब हो गयी है—

—खैर, हो जाने दो, मैं चलूं अब। लेट मी गो नाउ···

—जरा-सा बैठेंगी नहीं ?

इसके बाद अपनी हालत की बात सोचकर मिस सेन ने कहा—आपको भला बैठाऊँगी भी कहाँ ? आप आयी हैं और मेरे पास आपको बैठाने के लिए जगह तक नहीं है।

—तो इससे क्या हुआ ? मैं बैठने के लिए तो नहीं आयी।

वह युवक अब तक केवल चुपचाप खड़ा होकर सुन रहा था। इस बार थोड़ा सरक कर उसने कहा—आप यहां बैठिये न—

मिस सेन ने जल्दी से इन्ट्रोड्यूस करा दिया।···ये हैं मेरे दोस्त मिस्टर···

आण्टिया ने अच्छी तरह देखा उस युवक को। उसकी इच्छा हुई कि इस जगह को आण्टिया छोड़कर तुरन्त चली जाये लेकिन अचेतन मन की किसी प्रक्रिया के कारण वह वहीं चेयर पर बैठ गयी और नमिता से कहा—तुम नहीं बैठोगी ?

अब जाकर आण्टिया की नजर में आया कि घर में तो केवल एक ही कुर्सी है, और कोई बैठने की चीज ही नहीं है। बस एक खाट है, चौकोनुमा, सस्ती-सी। उसी के ऊपर बिछौना है। क्या इसी बिछौने पर मिस सेन रात को सोती है? क्या यही है उसका घर-बार? कहीं भी तो कोई फर्नीचर नहीं दीख पड़ता। ब्लाउज—साड़ी रखने के लिए वार्डरोब नहीं। न सोफ़ा है, न ड्रेसिंग-टेबिल है? मिस सेन कहाँ बैठकर टॉयलेट करती है? कौन जाने? दीवार पर एक काँटे में लटका हुआ छोटा-सा आईना झूल रहा है।

—आप मेरे घर आयी हैं, चाय बनाऊँ आपके लिए?

—नहीं, उसकी कोई जरूरत नहीं, इससे बेहतर तो यही होगा कि मैं अब चलूँ।

युवक ने कहा—मिस सेन से आपका नाम सुना था, अब आपको प्रत्यक्ष भी देख लिया।

मिस सेन ने बातचीत के दौरान कहा – ये अगर यहाँ नहीं रहते तो मैं भी यहाँ अकेले नहीं रह पाती। यहाँ के लोगों को तो देखा है आपने? चारों ओर लो-क्लास के लोग रहते हैं।

युवक ने कहा—इसके अलावा यहाँ घर भी तो नहीं मिलता। मिस सेन के रहने के लायक घर यहाँ कहाँ है? मैंने तो बहुत कोशिश की।

मिस सेन ने कहा—आजकल फ्लैटों के किराये भी तो बहुत बढ़ गये हैं बम्बई में। एक सौ रुपये में भी फ्लैट नहीं मिल पाता। आप ठीक से बैठिये न। आपको बहुत तकलीफ़ दी।

युवक बोला—नमिता, तुम जरा चाय तो बना दो, मिस श्रॉफ़ इतनी तकलीफ करके आयी हैं।

वही गन्दा माहौल, वही मैला वातावरण, गन्दा घर, बदसूरत-सा युवक, आण्टिया को जैसे सब कुछ घृणास्पद लगने लगा। हठात् उसने कहा—अच्छा, मैं चलूँ, तुम्हारे काम के बीच मैंने निश्चय ही…

मिस सेन ने कहा—नहीं-नहीं, मुझे कोई भी काम नहीं था। मैं तो ऑफिस जाने के पहले ही दोनों वक्त का खाना बनाकर रख देती हूँ। इस समय तो इनके साथ बैठकर गप-शप कर रही थी।

—जो भी हो, तुम बैठकर गप-शप करो। मुझे जाने दो।

कहने के साथ ही इस बार आण्टिया उठ खड़ी हुई और दरवाज़े की ओर चलने लगी। मिस सेन भी पीछे-पीछे आयीं।

मिस सेन ने कहा—रास्ते में अँधेरा है, ज़रा सावधानी से जाइये लेकिन मिस सेन के सावधान करने के पहले ही आण्टिया गली में जा

मिस सेन भी पीछे-पीछे आने लगी।

—देखिये, मेरा हाथ पकड़ लीजिये।

मिस सेन ने स्वयं आगे बढ़कर आण्टिया का हाथ पकड़ लिया। काफ़ी सख्त हाथ था मिस सेन का। हो सकता है मिस सेन अपने ही हाथों से सारा काम करती है, इसलिए हथेली इतनी कड़ी हो गयी हो। आण्टिया ने काफ़ी ज़ोर से मिस सेन का हाथ पकड़ लिया।

—देखियेगा, यहाँ पर एक गढ़ा है।

इसके बाद पकड़कर सीधे रास्ते पर ले आयी। इस बार जूते में, पेटीकोट में या साड़ी में कीचड़ या मिट्टी नहीं लगी।

मिस सेन अकेले ही आयी थी आण्टिया को पहुँचाने। युवक नहीं आया था। हठात् आण्टिया ने पूछा—क्या यह तुम्हारा ओल्ड फ्रेंड है?

—नहीं, मिस सेन ने कहा।

—न्यू?

—हाँ, न्यू। मिस सेन ने कहा।

—आइ सीऽऽ···

आण्टिया ने और कुछ नहीं कहा। कार स्टार्ट कर दी। इसके बाद कटआउट खोलकर एक जोरदार आवाज़ करते हुए आण्टिया की स्टुडि-बेकर अँधेरी पार करती हुई सीधी कम्बाला हिल्स की ओर दौड़ चली।

मिस्टर सेनगुप्त के साथ मेरा परिचय नया-नया हुआ था। मेरे मुहल्ले में सभी लोग नये हैं। सभी अपनी-अपनी क्षमता के अनुसार घर-द्वार बना चुके हैं। किसी का घर छोटा है, किसी का बड़ा है। किसी ने खुद ही अपना घर बना लिया है, किसी ने कन्ट्रैक्टर के द्वारा बनवाया है। किसी का घर फ़ैशनेबुल है तो किसी का सीधा-सादा। लेकिन मुहल्ले के बीच में मिस्टर सेनगुप्त का मकान सबसे अधिक फ़ैशनेबुल था। बहुत-कुछ चण्डीगढ़ के मकानों जैसा। एक इटालियन शिल्पी बम्बई में आया था। स्टेट-गवर्नमेंट के किसी स्पेशल काम से आया हुआ था। मिस्टर सेनगुप्त ने उसी इटालि-यन शिल्पी के द्वारा अपने मकान का प्लान बनवाया था। उसे कलकत्ता बुला लिया था। क्या पास से और क्या दूर से, देखने पर लगता था कि मकान काफ़ी क़ीमती होगा। यानी कम से कम डेढ़ लाख रुपये से कम में तो ऐसा मकान बन नहीं सकता। कोई-कोई तो यह भी कहता कि दो लाख लगे होंगे पर कुछ लोग केवल एक लाख का ही अन्दाज़ लगाते।

मैं सोचता, एक लाख से कम भी भला क्या लगा होगा?

लेकिन मिस्टर सेनगुप्त ने जिस दिन से मकान बनवाया, उसी दिन

बहुत-सी अफ़वाहें उड़ने लगी। किसी ने कहा लाटरी का रुपया है। किसी ने कहा श्वसुर का रुपया है। लेकिन किसी भी बात का कोई सबूत नहीं दे सका। यह सब अनुमान-भर था। इसी अनुमान के ऊपर लोग अफ़वाह फैलाये जा रहे थे। इसके बाद फिर किसी ने उस अफ़वाह को लेकर दिमाग़ खराब नहीं किया। बाद में जैसे वह अफ़वाह दब गयी।

लेकिन मेरे साथ जब मिस्टर और मिसेज सेनगुप्त की बात हुई तब मुझे भी वह अफ़वाह याद आई। मैं रोज देखा करता था कि मिस्टर सेनगुप्त सुबह आठ बजे घर से अपनी कार लेकर निकल जाते हैं। मिसेज गुप्त के पास अपनी एक कार थी। वे उसे लेकर बाद में निकलती थीं। मिस्टर सेनगुप्त अपने आफ़िस में जाते थे, लेकिन मिसेज सेनगुप्त कहाँ जाती थीं कोई नहीं जानता। दरअसल वह कहीं भी नहीं जाती थीं। शायद घूमने घामने जाती हों। कार है, ड्राइवर है, रुपया-पैसा है, समय है, सब कुछ है। इसलिए भला इसमें अवाक् होने की क्या बात थी। इतना रुपया-पैसा कहाँ से पा गये मिस्टर सेनगुप्त? मिस्टर सेनगुप्त का जो काम-काज है उसमें तो इतना रुपया होना सम्भव नहीं।

मैंने पूछा—इसके बाद?

—इसके बाद—मिस्टर सेनगुप्त ने फिर आरम्भ किया—उसके दूसरे दिन ही आफ़िस में मिस थॉफ आण्ड्रिया से भेंट हुई नमिता की। मिस थॉफ आण्ड्रिया ने नमिता को भीतर बुलवाया। आफ़िस में स्टेनो को बुलवाना कोई नई बात तो है नहीं। आण्ड्रिया का तो ऐसा नियम ही है। सुबह से लेकर शाम तक एक गट्ठर चिट्ठियों का जवाब डिक्टेशन द्वारा देनी है वह। इसके बाद होता है लंच आवर। लंच का समय एक घण्टे रेस्ट का है। लेकिन एकाध दिन वह भी नहीं मिल पाता मिस सेन को। बहुत से डिक्टेशन टाइप करके, उनको सजा-धजाकर, पिन लगाकर अपनी बॉस मिस थॉफ के पास भिजवा देती।

उस दिन मिस सेन अपने कमरे में चली आ रही थी, काम-धाम निपटा कर, एकाएक आण्ड्रिया ने बुलाया—सुनो।

मिस सेन घूमकर खड़ी हो गयी। आण्ड्रिया ने हठात् पूछा—कल कितनी रात गये तुम्हारा वह फ्रेंड गया?

पहले-पहल यह सवाल सुनकर नमिता जैसे घबरा-सी गयी। इसके बाद थोड़ा रुककर कुछ सोच-समझकर बोली—आपके चले जाने के बाद ही चला गया।

—वह क्या तुम्हारा बहुत पुराना दोस्त है?

—नहीं, सिर्फ छः महीने हुए हैं परिचय हुए।

—ओह ! ऑलराइट।

जैसे इस नयी दोस्ती की बात सुनकर आण्टिया चिन्तित हो गयी। मिस सेन ने सोचा, शायद आण्टिया को अब और कुछ पूछना नहीं है। वह चलने को ही थी कि आटिण्या ने फिर पूछा—तुम लोग शायद रोज़ मिलते हो ?

मिस सेन ने कहा—हाँ, वह रोज़ ही आता है।

— दैट्स ऑलराइट—ऐसा कहकर आण्टिया ने अपने काम में अपना मन लगाया। मिस सेन ने सोचा शायद इस बात को आण्टिया नहीं भूल पायेगी। सचमुच ही बहुत लज्जा लगी थी मिस सेन को। ऐसी अवस्था में सुशान्त को देख लिया। पहले से यदि पता रहता तो कम-से-कम घर को तो सजा-धजाकर रखती। मैली साड़ियाँ कहीं छिपाकर रख देती। तकिये का ग़िलाफ़ कितना मैला था।

आण्टिया के चले जाने के बाद सुशान्त ने पूछा था—यही है तुम्हारी बॉस ?

नमिता ने कहा था—मैंने तो कल्पना भी नहीं की कि ऐसी हालत में वह मेरे घर चली आयेगी।

—अच्छा ही तो हुआ।

लेकिन चारों ओर इतना मैला-कुचैला परिवेश, मुझे तो सचमुच बड़ी शर्म आ रही थी।

तुम्हारी हालत तो तुम्हारे बॉस को जाननी ही चाहिए थी। तुम्हारी हालत जब उसने जान ली तो ठीक ही हुआ। ढाई सौ रुपये की नौकरी में इससे बढ़िया फ्लैट भला कैसे मिलेगा ?

लेकिन आदमी बहुत भली है। नमिता ने कहा था।

इतना रुपया-पैसा रहने पर आदमी भला तो होगा ही।

—लेकिन ज्यादा रुपया होने पर आदमी ख़राब भी तो हो जाता है।

सुशान्त ने कहा था—मेरे पास इतना रुपया होने पर मुझे भी तुम अच्छा ही कहतीं।

नमिता खिलखिलाकर हँसी थी—मैं तो तुम्हें ऐसे भी भला ही कहती हूँ।

—नहीं, मैं वह बात नहीं कह रहा हूँ। आज यदि मेरे पास खूब रुपये रहते तो तुम मुझे अभी ही, आज ही पति चुन लेतीं। यह कहकर सुशान्त हो-हो करके हँसा था, नमिता भी हँसी थी।

ऑफ़िस की छुट्टी हो गयी थी। सब लोग जा चुके थे। मिस सेन भी

जाने की तैयारी में थी।

सुशान्त कल की ही तरह राह देखना होगा।

चपरासी को बुलाकर मिस सेन ने पूछा—क्यों रे, मिस अभी भी है! चपरासी भी शायद मिस आण्टिया की ही खबर देने आ रहा था।

चपरासी ने कहा—आपको थोड़ा रुकने को श्रॉफ मेम-साँब ने कहा है।

श्रॉफ मेम साहब ने किसलिए उसे रुकने के लिए कहा है, यह जानती है वह। हो सकता है कि कोई अरजेण्ट काम हो। हो सकता है कि कल की तरह ही रात हो जाये। फिर ट्रेन छूट जाये। एक घण्टा बीत गया। पाँच बजे ऑफिस की छुट्टी हो गयी थी। छः बज गये। सात भी बज गए।

तब भी श्रॉफ मेम साहब के चैम्बर में बुलाहट नहीं हुई।

आखिरकार मिस सेन खुद ही बॉस के चैम्बर में गयी।

—मुझे क्या आपने वेट करने को कहा है?

मिस श्रॉफ आण्टिया ने काम करते-करते अपना सिर उठाया। कहा—हाँ, ये कुछ जरूरी पेपर टाइप तो कर दो मिस सेन। इन्हें कल आर्मी आवर्ज में डिसपैच करना होगा।

—आज ही टाइप करना होगा?

—हाँ, प्लीज।—ऐसा कहकर थोड़ा-सा मुस्करायी मिस श्रॉफ आण्टिया। अर्थात् थोड़ा अतिरिक्त काम (ओवरटाइम)—चूंकि वह अधिक काम करवा रही है, इसलिए जरा-सा मुस्कराकर जैसे मिस सेन को कृतार्थ कर रही हो।

इसके बाद जब रात के नौ बज गए, तो फॉस्टर जॉनसन कम्पनी का सारा ऑफिस साँय-साँय करने लगा। कहीं कोई भी नहीं था। केवल एक चपरासी और ये दोनों महिलायें बैठी-बैठी फ़ाइलों में अपना सिर खपा रही थीं।

रात के साढ़े नौ बजे आण्टिया अपने चैम्बर से निकलकर मिस सेन के केबिन में आयी।

—हो गया?

सारे कागजात अपने चैम्बर के टेबुल पर रखने को कहकर, दोनों एक ही साथ बाहर निकलीं। लिफ्ट से उतरते समय नमिता सोच रही थी सुशान्त इतनी देर में आ गया होगा। उसके पास चाबी तो डुप्लीकेट है। हो सकता है बैठे-बैठे इतनी देर में बिछौने पर लेट गया हो। यह भी हो सकता है कि सो गया हो।

नीचे सड़क पर आकर आण्टिया ने पूछा—अब तो तुम्हारी को

नहीं है ?

मिस सेन ने कहा—नहीं, मिस।

—तब क्या करोगी ?

—बस से जाऊँगी।

—उसमें तो तुम्हें बहुत देर हो जाएगी ?

—हाँ, लेकिन और क्या किया जा सकता है ? कहकर मिस सेन जल्दी जल्दी पाँव बढ़ाती हुई बस के रास्ते की ओर चली जा रही थी कि पीछे से आण्टिया ने कहा—इससे तो बेहतर है एक काम करो—

—क्या ? पीछे घूमकर बोली नमिता।

—अब इतनी दूर जाकर क्या करोगी ?

—लेकिन घर तो जाना ही होगा ?

—अगर नहीं जाओ तो ?

यह बात सुनकर अवाक् हो गयी थी मिस सेन।

आण्टिया ने समझाकर कहा—आज घर नहीं जाने पर क्या तुम्हें कुछ असुविधा होगी। दरवाज़े में ताला तो लगाया हुआ होगा।

—वह तो लगाया हुआ है।

—चोरी होने का तो कोई डर नहीं ?

—नहीं, उसकी कोई चिन्ता नहीं।

—तब क्या सोच रही हो ?

नमिता क्या सोच रही है, उसे स्पष्ट नहीं कहा जा सकता। इसके अलावा घर न जाकर यदि और कहीं रात काटनी पड़े तो उसे नींद नहीं आएगी। लेकिन यह भी खुलकर नहीं कहा जा सकता।

—इससे तो बेहतर है कि आज मेरे ही घर चलो।

—आपके घर ?

—क्यों ? क्या आपत्ति है ?

तब भी नमिता ने थोड़ी-सी झिझक दिखायी।

आण्टिया ने कहा—तुम्हें साड़ी-ब्लाउज़ की कोई चिन्ता नहीं करनी होगी। मेरे पास बहुत-सी साड़ियाँ हैं। तुम्हें कोई असुविधा नहीं होगी।

क्या करे नमिता, समझ नहीं पा रही थी। पता नहीं सुशान्त क्या सोच रहा होगा ? हो सकता है सुशान्त को क्रोध आ गया हो और उसी क्रोध में वह कल बातचीत तक न करे, कितना तुनक मिज़ाज है वह।

—चलो, देरी करने से कोई फ़ायदा नहीं। इट्स गेटिंग लेट। इसके बाद नमिता की जिन्दगी में पहली बार एक अजीब-सा तजुर्बा हुआ, एक विचित्र-सा अनुभव हुआ नमिता के जीवन में। अब तक जिस दुनिया को

उसने देखा-सुना था, वह जैसे यह दुनिया नहीं थी। यह दुनिया उससे बिल्कुल अलग-अलग थी। यहाँ पर रुपया रुपया नहीं था, जवानी जवानी नहीं थी, शायद जिन्दगी भी वह जिन्दगी नहीं थी।

उस रात को एक नये कैरेक्टर के साथ परिचय हुआ नमिता का। लेकिन वही उसका प्रथम परिचय था और वही अन्तिम भी।

मैंने पूछा - कैसा परिचय ?

मिस्टर सेनगुप्त ने कहा—इसीलिए तो मैंने आपको शुरू में कहा था कि कैरेक्टर लेकर आप लिखेंगे या नहीं ? सचमुच ही एक विचित्र-अद्‌भुत कैरेक्टर है यह मिस श्रॉफ आण्टिया।

देखिए किसी भी कैरेक्टर को वर्णन के द्वारा नहीं समझा जा सकता। कैरेक्टर समझने के लिए सिचुएशन के द्वारा उसे एक्सप्लेन करना होता है। इस मिस श्रॉफ आण्टिया को जिन लोगों ने घर पर देखा है, जिन्होंने उसे सड़क पर स्टुडिबेकर कार ड्राइव करते देखा है, जिन्होंने उसे ऑफिस के चेम्बर में देखा है, उन लोगों का देखना और नमिता का देखना दोनों भिन्न है। एक ही आदमी को पारलर में देखना, ड्राइंग रूम में देखना और बेडरूम में देखना, भिन्न वस्तुएँ हैं। इसीलिए तो हम लोग जल्दी किसी को अपने बेडरूम में नहीं जाने देते। लोग हमें वहाँ पहचान सकते हैं। लेकिन हम यदि स्वयं ही अपने को दिखाना चाहें तो। यदि हम चाहें कि कोई हमें पहचान ले तो ? मिस श्रॉफआण्टिया यही चाहती थी। उस रात को क्यों मिस सेन को उसने अपने बेडरूम में सोने दिया ? कौन कह सकता है ? बे-शुमार दौलत की मालकिन मिस श्रॉफ आण्टिया कैसे अपने असली चेहरे को मिस सेन के सामने खोल सकी ?

—मेरे लिए आपको बड़ी तकलीफ उठानी पड़ी। नमिता ने कहा।

— नहीं, तुम कुछ खयाल न करो मिस सेन, मुझे कोई तकलीफ नहीं हुई।

—अपने बिछौने पर क्यों सोने दिया आपने ? मैं तो और भी कहीं सो सकती थी। मुझे तो सभी जगह नींद आ सकती थी।

लम्बा-चौड़ा बैड-रूम, चारों ओर आदम-कद शीशे लगे हुए। चारों तरफ वार्डरोब। चारों ओर विलासिता. चारों ओर ऐश्वर्य। जिन्दगी में ऐसे विलासमय परिवेश में कभी नहीं रही थी नमिता सेन। जीवन में ऐसा ऐश्वर्य कभी नहीं देखा था उसने। रुपया खर्च करने पर मनुष्य इतने सुख-विलास में भी रह सकता है।

आण्टिया ने उसे अपनी साड़ी, अपना ब्लाऊज और अपना पेटीकोट, रना सब कुछ दिया। अपना साबुन, अपना टॉवेल, अपना तकिया, अपना डरूम, अपना सब कुछ देकर वह मिस सेन को प्रसन्न करने की चेष्टाकर ही थी। इसके अलावा एक साधारण लेडी स्टैनो और क्या आशा कर कती है ?

नीले रंग की रोशनी में बैडरूम के भीतर खड़ी होकर मिसश्रॉफ़ साड़ी बदल रही है, पेटीकोट बदल रही है। मिस सेन बैडरूम के भीतर बिछौने पर सोयी हुई है, यह जानकर भी तनिक-सी लज्जा या संकोच उसे नहीं हुआ। क्या स्वास्थ्य है मिस श्रॉफ़ आण्टिया का! ऑफिस में देखने पर ठीक नहीं समझा जा सकता। कपड़ों के भीतर इस प्रकार लावे की तरह उफनता हुआ यौवन होगा, मिस सेन ने इसकी कभी कल्पना भी नहीं की थी।

लेकिन बहुत रात गये अचानक नमिता की नींद टूट गयी।

—कौन ? कौन ?

हो सकता है, स्वप्न रहा हो। शायद स्वप्न नहीं भी हो। शायद एक साधारण-सी घटना ही रही हो, दुर्घटना भी तो हो सकती है। डनलप-पिलो के झूले में स्प्रिंग की लहरें! इसके बाद फिर नींद! फिर भोर! फिर सुबह! फिर साड़ी का बदलना! फिर बेबी स्टुडिबेकर! फिर फ़ॉस्टर जॉनसन कम्पनी का आफिस! फिर स्टेनोग्राफी!

आफिस में यह खबर गरम हो गयी कि मिस सेन का प्रमोशन हो रह है। एक रुपया नहीं, दो रुपया नहीं, एक बारगी ढाई सौ रुपये। इसका मतलब कुल मिलाकर पाँच सौ रुपये। उस दिन जो ग़रीब बनकर आई थी, उसे आज लक्ष्मी की कृपा मिली है। जो लोग एक दिन उनके साथ बैठकर गप-शप करते थे, एक साथ बैठकर चाय पीते थे, हठात् वह उन लोगों की सीमा से बाहर चली गयी है।

अब स्टेनोग्राफ़र नहीं। एकदम श्रॉफ़ आण्टिया की परसनल सैक्रेटरी। परसनल सैक्रेटरी की ही तरह ड्रेस। मिस सेन के टेबुल पर भी मिस आण्टिया के टेबुल की ही तरह टेलीफोन। मिस श्रॉफ़ आण्टिया के साथ भेंट करने के लिए मिस सेन की परमिशन ज़रूरी है।

सब कुछ जैसे बदल गया रातों-रात। ऑफ़िस की ज़िन्दगी में ऐसी ऊँच-नीच होती ही रहती है। इसे पाकर लोगों को आनन्द भी होता है। और कष्ट भी। कभी-कभी अवाक् भी होना पड़ता है। लेकिन ऐसी उल्टी बात कहीं भी नहीं सुनी गयी थी। फ़ास्टर जॉनसन कम्पनी के ऑफ़िस में

जैसे एक घनघोर परिवर्तन आ गया हो। दोनों ही एक साथ ऑफ़िस में आकर अपने-अपने केबिन में बैठतीं। इसके बाद फिर ऑफ़िस का काम निपटाकर एक साथ चली जातीं। पहले तो लोगों को विश्वास नहीं हुआ।

लोग कहते—सचमुच ऐसी बात ?

उत्तर होता—हाँ भाई, हाँ।

—लेकिन यह कैसे हुआ ?

—होता है, होता है, सब कुछ होता है। चापलूसी करने से सब कुछ होता है। पहले एक अफवाह, इसके बाद किम्वदन्ती, बाद में फिर सारी चीजें सहज-स्वाभाविक हो गयीं। मिस श्रॉफ जैसी साड़ी पहनती अब वैसी ही साड़ी मिस सेन की भी होती। मिस सेन की जैसी कार थी, वैसी ही कार अब मिस सेन के पास थी। यह बात अब किसी से छिपी नहीं रही कि मिस सेन मिस श्रॉफ के ही घर रहती है। हठात् एक दिन एक काण्ड हो गया।

काण्ड वैसे कुछ भी नहीं था लेकिन मिस श्रॉफ आत्यिया विचलित हो गई। क्रोध के कारण उसके दोनों गाल लाल हो उठे।

बहुत दिनों से मिस सेन को अपने घर पर रखा हुआ था मिस श्रॉफ ने।

मिस श्रॉफ़ ने कहा था—क्यों बेकार में तुम भाड़े के घर में रहती हो। मेरे पास अपना खुद का इतना बड़ा घर है।—

बस उसी दिन से मिस श्रॉफ़ ने नौकर-चाकर भेजकर मिस सेन का सारा माल-असबाब अपने यहाँ मँगवा लिया। बाकी भाड़ा भी उसी ने दे दिया था। इसलिए नमिता सेन का अब कोई विशेष खर्च नहीं रहा। मिस श्रॉफ की कार पर चढ़ना, मिस श्रॉफ के घर में रहना, खाना और सोना। सब कुछ मिस श्रॉफ के ही खर्च पर अर्थात् अब एक पैसे का भी खर्च नहीं। सारी तनख्वाह नमिता के हाथ में बच जाती। वे सारे रुपये बैंक में जमा करके पूरा महीना मिस श्रॉफ के ही खर्च पर चलता।

मिस श्रॉफ कहा करती थी—तुम्हें अपने से कुछ भी खर्च करने की जरूरत नहीं है, मेरे पास इतना रुपया पड़ा हुआ है।

कभी कहती—एक साड़ी खरीदो न मिस सेन।

—साड़ी तो मेरे पास बहुत-सी हैं मिस श्रॉफ। और साड़ी लेकर क्या होगा ?

तब भी, कुछ न कुछ खरीदो तो।

—कुछ खरीदना ही होगा ?

—हो सके तो एक साड़ी, नहीं तो एक गहना, नहीं तो एक कोई

ंचर ही खरीद देती थी आण्टिया। मिस सेन को जैसे सब कुछ देकरही
ण्टिया को तृप्ति होती, कब मिस सेन का वर्थ-डे है, कब मिस सेन की
ायत खराव है, सब कुछ मिस श्रॉफ़ की उँगलियों पर रहता।

मिस सेन की खातिरदारी में अगर ज़रा-सी भी चूक नौकरों से हो
ये तो उनकी नौकरी चली जायेगी। मिस सेन यदि तनिक भी किसी पर
ोधित हों तो मिस श्रॉफ़ आण्टिया के लिए वह व्यक्ति अक्षम्य है। फिर
ी उस आदमी की रिहाई नहीं।

आफिस में यदि किसी का पनिशमेण्ट हुआ हो तो मिस श्रॉफ़ के पास
जाने पर ही उसकी मुक्ति हो जायेगी। वह उससे वरी हो जायेगा, लेकिन
मिस श्रॉफ़ के पास जाने का साहस नहीं है किसी को। तब मिस सेन का ही
भरोसा रहता है। मिस सेन के द्वारा ही सारी समस्याओं का समाधान हो
जायेगा। मिस सेन की बात टालने की क्षमता नहीं है मिस श्रॉफ़ में।

लेकिन अचानक एक दिन यह दुर्घटना हो गयी।

मिस श्रॉफ़ आण्टिया ने कभी कल्पना तक नहीं की थी कि ऐसा भी
हो सकेगा। शाम को मिस श्रॉफ़ आण्टिया बाहर निकली थी। इसके बाद
इनकमटैक्स के वकील से बातचीत करके जब वह अपने घर लौटी तो उसे
अवाक् हो जाना पड़ा।

सुशान्त ! ! !

सुशान्त को देखते ही आण्टिया भक्क से जल उठी।

इस समय यकायक मिस श्रॉफ़ घर आ जायेगी, ऐसा तो उन दोनों में
से किसी ने भी नहीं सोचा था। बाहर से कार की आवाज़ सुनते ही
सुशांत भागना चाह रहा था। लेकिन रंगे हाथ पकड़ा गया।

सुशान्त पहले भी ऐसे ही आता रहा, लुक-छिपकर बातचीत भी की
है उसने। किसी को पता भी नहीं लगा। सुशान्त कहा करता था—तुम्हारे
बॉस को पता तो नहीं लगेगा ?

नमिता कहती—तुम्हें वे सब बातें नहीं सोचनी पड़ेंगी।

लेकिन अगर वह जान जाय तो ?

—जानकर और क्या कर लेगी ? काटकर फेंक तो देगी नहीं। लेकिन
तुम्हारे न आने पर मुझे अच्छा नहीं लगता।

सुशान्त कहता—मुझे ही क्या अच्छा लगता है ?

—तब बोलो, मैं क्या करूँ ? नौकरी छोड़ दूँ ?

—नहीं, नहीं। व्यर्थ में नौकरी क्यों छोड़ दोगी ? इतने रुपये की
नौकरी—

—आजकल रुपयों के प्रति मेरी कोई ममता नहीं है।

सुशान्त कहता—मुझे भी तो रुपये के प्रति कोई माया नहीं है।

नमिता कहती—रुपयों के लिए मैंने अपना सब कुछ खो दिया···

—क्यों, मैं तो रोज़ ही आता हूँ।

—लेकिन इस तरह लुक-छिपकर चोरी से कितने दिन तुमसे मिलूंगी। इससे तो पहले का जीवन ही अच्छा था। रोज़ रात को तुम्हें देख तो पाती थी।

—तो थोड़ा और रुपया जमा कर लो। तब नौकरी छोड़कर आ जाना। इतने दिन में मेरा भी प्रमोशन हो जाएगा।

नमिता तब कुछ दुविधा में पड़ जाया करती थी।

—जानते हो, मैं यदि आण्टिया का घर छोड़कर चली जाऊँ तो उसे मन-ही-मन बड़ा कष्ट होगा। मुझे बड़ा प्यार करती है वह।

सुशान्त क्रोधित हो उठता। वह कहता, ऐसे प्यार की ज़रूरत नहीं है—

—लेकिन सचमुच विश्वास करो, मैं अगर नहीं रहूँ तो मिस श्रॉफ़ कुछ भी नहीं कर सकती। मैं अगर साथ न रहूँ तो मिस श्रॉफ़ खाना नहीं खा सकती। मेरे साथ नहीं सोने पर मिस श्रॉफ़ को नींद नहीं आती। मैं अगर नौकरी छोड़ दूँ तो आण्टिया को बहुत ही कष्ट होगा।

—तो मिस श्रॉफ़ का ही कष्ट बड़ा हुआ ? मेरा कष्ट कुछ भी नहीं। मैं तुम्हारा कोई नहीं हूँ।

नमिता सान्त्वना देती। कहती—तुम इतना क्रोध क्यों करते हो ? तुम से तो रोज़ ही मिला करती हूँ—

इस तरह लुक-छिपकर, चोरी-चोरी से कब तक तुमसे मिला करूँ ?

नमिता कहती— देखती हूँ, क्या कर सकती हूँ···

इसी प्रकार दोनों मिलते-जुलते रहे। ऐसे ही मिस श्रॉफ़ आण्टिया की आँखों के सामने एक दूसरी ट्रेजेडी का बीजारोपण किया जा रहा था। वह ट्रेजेडी कौन-सा रूप ग्रहण करेगी, कोई नहीं जान सका।

उस दिन नज़र पड़ते ही श्रॉफ़ आण्टिया अचानक जैसे शेरनी की तरह झपट पड़ी। उसने पूछा—तुम ?

सुशान्त की सारी देह थर-थर काँपने लगी।

—क्यों आए तुम यहाँ ? क्या करने आए ? ? ह्वाट वॉंट यू हियर ? टेल मी ?

सुशान्त तब भी चुप था। और कोई उपाय नहीं। धीरे-धीरे पीछे की ओर सरकने की कोशिश करने लगा।

मिस श्रॉफ़ ने झपटकर सुशान्त का हाथ पकड़ लिया। श्रॉफ़

सख्त मुट्ठी में सुशान्त काँपने लगा।

—टेल मी, ह्वाई यू हैव कम हियर ? क्यों आए तुम यहाँ ? किसकी रमिशन से आए यहाँ ?

सुशान्त काँपने लगा।

आण्टिया ने चीखकर पुकारा—मिस सेन।

नमिता आयी।

आण्टिया ने पूछा—यह क्यों आया यहाँ ? ह्वाइ ही हैज़ कम हियर? तुमने वुलाया था क्या ?

मिस सेन के मुँह से भी कोई वात नहीं फूटी। घर के सभी नौकर-चाकर ड्राइवर, वटलर, खानसामा सभी आण्टिया की चीख सुनकर सामने हाज़िर हो गए थे।

—टेल मी, तुमने वुलाया था उसे ? घर के भीतर मिस श्रॉफ़ आण्टिया से सभी डरते थे। वहुत ही गम्भीर और झक्की मिज़ाज की थी वह। नौकर को वुलाकर पूछा—यह आदमी कव आया था घर में ? दर-वान को वुलाकर पूछा। कोई नहीं वता सका कि कैसे और कव सुशान्त घर में घुस आया।

स्ट्रेंज ! 'वेरी स्ट्रेंज !!

तुरन्त सभी को वरखास्त कर दिया। मिस श्रॉफ़ आण्टिया ने।

एक मिनट के भीतर मिस आण्टिया के घर में एक भयंकर काण्ड हो गया।

वहुत दिनों का पुराना दरवान, पुराना नौकर, सवकी नौकरी चली गयी।

मिस श्रॉफ़ आण्टिया का कोप-भाजन वनकर भला किसे छूट हो सकती थी ? यह तो सभी जानते थे। लेकिन मिस सेन को इससे भी मुक्ति नहीं मिली। श्रॉफ़ ने सभी के सामने उससे पूछा—वतलाओ, क्या इसे तुमने वुलाया था ? वोलो ? वोलो ??

नमिता ने कहा - नहीं।

लेकिन रात को विछौने पर सोकर एकाएक मिस सेन की आँखों झर-झर आँसू झरने लगे। वह अपनी रुलाई नहीं रोक सकी। तकिये मुँह छिपाकर फफक-फफककर रोने लगी।

आण्टिया पास में ही सोयी थी। उसने पूछा—क्या हुआ मिस सेन ह्वाट हैपेण्ड ?

मिस सेन तव भी तकिये में मुँह छिपाकर रो रही थी।

—क्या हुआ तुम्हें ?

मिस सेन के चेहरे को अपने हाथों में पकड़कर आण्टिया ने जब घुमा कर अपनी ओर देखा तो वह अवाक् हो उठी। रो-रोकर आँखें, मुँह, गाल कान सब कुछ लाल कर लिया था उसने ?

—क्या हुआ तुम्हें ?

—आपने उसे इस तरह से क्यों डाँटकर निकाल दिया ?

—लेकिन इससे तुम्हें मतलब ?

—लेकिन मैंने ही तो उसे बुलाया था। मैं उसे प्यार करती हूँ। कहते-कहते मिस थॉफ आण्टिया के कोमल लेकिन उभरे हुए उरोजों में अपना मुँह छिपाकर फफक-फफककर रोने लगी मिस सेन।

मिस सेन की रुलाई से आण्टिया के उरोज पत्थर की तरह शीतल हो उठे। इतना करने पर भी मिस सेन इस तरह पीड़ा दे रही है उसे! नौकरी में प्रमोशन दे दिया, अपने घर लाकर रखा, तब भी! जिस तरह खुद आराम से रहती है, ठीक वैसे ही मिस सेन को भी उसने सब कुछ दिया था। तब भी मिस सेन को वह सुखी नहीं कर सकी।

—लेकिन तुम अपना कॅरियर, अपना व्यक्तित्व क्यों नष्ट कर रही हो ? क्या उस 'हैगार्ड' छोकरे के लिए ?

नमिता ने कोई भी उत्तर नहीं दिया। बस रोती रही।

—तुम किसी दूसरे लड़के से शादी कर सकती हो। मुझे कोई आपत्ति नहीं होगी। तुम्हारी भलाई के लिए ही तो मैंने उसे यहाँ आने को मना कर दिया है।

इसके बाद जरा-सा रुककर फिर बोलने लगी—मिस सेन चुप हो जाओ, मत रोओ मिस सेन, मत रोओ।

लेकिन मिस सेन और भी रोने लगी। उसकी रुलाई किसी भी तरह से रुक नहीं पा रही थी।

—मैं चाहती हूँ कि तुम बहुत ऊँची उठो, तुम भी बड़ी आदमी हो जाओ'''और एक दिन ऊँची पोस्ट पाओगी तुम, इस कम्वाला, हिल्स पर तुम्हारा घर होगा। मैं भी तो तुम्हारा भला चाहती हूँ। मैं क्या तुम्हें कम प्यार करती हूँ ?

मैंने पूछा—इसके बाद ?

मिस्टर सेनगुप्त बोले—आप उपन्यासकार हैं। इसकी व्याख्या तो आप ही करेंगे। मैंने तो आपको केवल घटना बतायी है। कैरेक्टर को सिचुएशन के द्वारा एक्सप्लेन करना पड़ता है, इसे बताने की तो कोई जरूरत नहीं पड़ेगी मुझे। वर्णन के द्वारा उसे समझाया भी नहीं जा सकता।

कोक्ति है न— उपदेश की तुलना में उदाहरण पेश करना बेहतर होता ।—एग्ज़ाम्पल इज़ वेटर दैन प्रिसैप्ट्स—वस यह भी वैसा ही समझिए। सलिए दूसरे दिन ही ऑफ़िस में जाकर मिस श्रॉफ ने जो काम किया, यह था मिस सेन का और प्रोमोशन।

—और प्रोमोशन का मतलब ?

—मतलब यह कि मिस सेन को ऑफ़िस के खर्चे से लन्दन भेजने को वात हो गयी।

मैंने पूछा—क्यों ?

मिस्टर सेनगुप्त ने कहा—ट्रेनिंग के लिए।

लेकिन असली उद्देश्य कुछ दूसरा ही था। मिस सेन को भारत से वाहर भेजने से शायद वह उस छोकरे को भूल जाय। हो सकता है कि वह फिर से स्वस्थ हो जाय। हो सकता है कि कुछ दिन लन्दन में रहने पर उसके मन की दुर्वलता समाप्त हो जाय। यह भी तो एक प्रकार की कमज़ोरी है। आँख-ओट, पहाड़ ओट। मनुष्य का हृदय भी तो पानी पर पड़ी हुई लकीर जैसा है। हवा लगते ही पानी पर की लकीर मिट जाती है।

मिस श्रॉफ ने भी यही वातें कहीं-सुनीं।

एयरपोर्ट पर जब मिस सेन को पहुँचाने वह गयी थी तब मिस सेन की आँखें डबडवा आयी थीं।

और तव मिस श्राफ़ आण्टिया ने कहा था—यही तुम्हारी वी कर्नै है। क्या तुम इस वीकनैस की प्लेन बनोगी ? तुम्हारे सामने तु म्हार ब्राइट फ्यूचर पड़ा हुआ है। तुम भी मेरी तरह एक दिन फ़ॉस्टर जॉनसन कम्पनी की विज़नैस एक्ज़ीक्यूटिव होगी। क्यों एक हैगर्ड से शादी करके अपनी लाइफ़ को स्पॉइल करना चाहती हो ? भला तुम्हें क्या पड़ी है ? तुम्हें किस चीज़ की कमी है ? मैं जब तक हूँ तब तक तुम्हें किसी वात का डर नहीं।

लेकिन जब तक हवाई जहाज नहीं उड़ा, तब तक मिस श्राफ़ को जैसे शान्ति नहीं मिली। कई दिनों तक जैसे मिस सेन को समझा-बुझाकर रख था। वहुत वड़ी आदमी होगी वह, यही वात वार-वार समझायी थी मि श्राफ ने। मिस सेन ने कुछ भी उत्तर नहीं दिया था। सिर्फ चुपच आण्टिया की वातें सुनती रही थी। लेकिन प्लेन उड़ जाने के बाद मि श्राफ़ आण्टिया भी अपने को रोक नहीं सकी। उसकी आँखों से भी अ जैसे झर जाना चाहते थे।

आप उपन्यासकार हैं, इस वात को लेकर आप पन्ने पर पन्ने रँग स हैं। मुझे डिटेल्स वताने की ज़रूरत नहीं है। मैं इतने डिटेल्स वता भी

सकता। उपन्यासकार जब चरित्र का निर्माण करता है, तब चरित्र के चेहरे धूमिल-से रहते हैं। जैसे-जैसे पन्ने उलटे जाते हैं वैसे ही चरित्र भी स्पष्ट होने लगते हैं। नाक, मुँह, आँख से लेकर पैरों के नाखूनों तक सब कुछ उपन्यास के अन्तिम अध्याय तक जैसे स्पष्ट हो उठता है।

मिस थ्रॉफ आण्टिया का चरित्र इस कहानी के अन्त में जैसे स्पष्ट हो उठा। जो कोई नहीं जान सका था, उसी को सब लोग जान गये। सभी लोग सुनकर अवाक् रह गये।

—क्या सुनकर?

—आज से सात वर्ष पहले एकाएक बम्बई के अखबारों में सुबह एक खबर छपी। खबर थी—मिस थ्रॉफ आण्टिया ने अपने घर में आत्महत्या कर ली है। आत्महत्या क्यों की, इसे कोई नहीं जानता। किस बात की उसे तकलीफ थी, यह भी किसी को नहीं पता। बेशुमार दौलत की वसीयत कर गयी थी वह मिस सेन के नाम। मरने के पहले ही वसीयत कर चुकी थी।

पुलिस आयी थी, अखबारों के संवाददाता भी आये थे। कुछ भी पता नहीं लगा। मिस थ्रॉफ आण्टिया ने क्यों हत्या की? आत्महत्या करने के एक दिन पहले भी वह ऑफिस गयी थी, ऑफिस में जाकर बाकायदा उसने सब काम निबटाया था। इसके बाद स्टुडीबेकर कार चलाकर घर आयी थी। कॉफी पी थी। रोज की ही तरह स्नान किया था। इसके बाद डिनर पर बैठी थी। डिनर के बीच ही एक टेलीग्राम आया था।

टेलीग्राम किया था मिस सेन ने। लन्दन से। टेलीग्राम में लिखा था कि लन्दन में ही उसने सुशान्त से विवाह कर लिया है। टेलीग्राम का मुख्य उद्देश्य इसी विवाह की खबर देना था।

इस टेलीग्राम के पाने के बाद ही जैसे मिस थ्रॉफ आण्टिया कुछ दूसरी तरह की हो उठी थी। खाना बीच में ही छोड़कर उठ गयी थी। इसके बाद घर का दरवाज़ा बन्द कर लिया था। किसी के साथ कोई बातचीत नहीं की थी उसने। नौकर-चाकर, आया, बटलर किसी को भी नहीं बुलाया। सुबह दरवाजा बन्द देखकर पहले कोई कुछ नहीं समझ सका। उसके बाद सुबह आठ बजे तक भी जब दरवाज़ा नहीं खुला, तो उन लोगों के मन में कुछ सन्देह हुआ। उन्होंने पुलिस को खबर दी। टेलीग्राम तकिये के नीचे ही पाया गया।

लेकिन इस कहानी में चरित्र किसका है? मिस थ्रॉफ आण्टिया का!

मिस्टर सेनगुप्त से सारी कहानी सुनकर मेरे मन में यही आया था। लेकिन मुझे तब भी नहीं पता था कि मिस्टर व मिसेज़ सेनगुप्त —

कहानी के पात्र हैं। वह तो मुझे वहुत दिनवाद पता चला था। तव मिस्टर सेनगुप्त हमारे मुहल्ले के अपने घर को वेचकर यू० एस० ए० चले गये थे। वहीं पर रहने लगे थे।

मैंने वम्बइ के अपने एक दोस्त को यह कहानी सुनाई थी।

उन्होंने ही कहा था—अरे! मिस्टर और मिसेज़ सेनगुप्त ही को तो मिस श्रॉफ़ आण्टिया की सारी सम्पत्ति मिली थी।

मैं जव वम्वई गया था, तव मुझे यह कहानी मिली थी। लेकिन वम्वई और कलकत्ते के इन्सान में तो कोई अन्तर नहीं है। कलकत्ते के इन्सानों पर भी तो लिखा है। और लगता है कि मानव की विचित्रता का कोई अन्त नहीं है। वह चाहे कहीं का भी रहने वाला हो, चाहे लन्दन का हो, चाहे अमेरिका का हो और चाहे पेरिस का हो। इसीलिए तो मेरे मानव-चरित्रों में उसी शाश्वत मानव का प्रणय, क्रन्दन और आकांक्षाएँ रहती हैं। कभी उन्हें रुलाकर मैं रोया हूँ, तो कभी उन्हें चिन्ता में डालकर खुद चिन्तित हुआ हूँ और कभी उनकी हत्या करके दर्द से छटपटाता रहा हूँ। ठीक वैसे ही जैसे अटल'दा और इन्दुलेखा देवी।

भूल सभी से होती है। लेकिन उस भूल को अटल'दा की तरह मर्मान्तक भाव से कितने लोग अनुभव करते हैं। अटल'दा के पास क्या नहीं था? विद्या थी, स्वास्थ्य था, और साधारण लोगों के पास जो नहीं होता, वह भी था। लेकिन उस एक भूल के कारण यह सारे ही गुण व्यर्थ हो गये। अन्तिम परिणाम कैसा निकला!

और इन्दुलेखा देवी?

पत्नी वहुतों के होती है। और वहुतों के पास नहीं भी होती, किन्तु ऐसी पत्नी कितनों को मिलती है—अटल'दा की तरह। कोई स्त्री अपने पति की प्रतिभा का आदर करती है। कोई अपने पति के सांसारिक काम-काज में रोड़ा वनकर खड़ी हो जाती है। कोई अपने पति के सारे दोषों को ढँक लेती है तो कोई ऐसी भी स्त्री होती है कि अवहेलना-तिरस्कार से पति का जीना दूभर कर दे। पति-पत्नी सम्पर्क को लेकर इस दुनिया में कितने विचित्र एवं जटिल उपन्यास लिखे गये हैं। लेकिन ऐसी कहानी भला कितने उपन्यासों में पायी जाती है? और इन्दुलेखा देवी सदृश ऐसी पत्नी ही कितने पतियों को मिलती है? और ऐसी पत्नी मिलने पर इस तरह की अवहेलना ही कितने पति करते हैं।

याद आता है—विवाह के ही दिन यह घटना घटी थी। जब से डायरी लिखना शुरू किया है तब अच्छी-खासी उम्र हो चली थी। लेकिन उसके ... पका- ... र कि ... ना-मा चेहरा—पर और कुछ याद हो न हो पर इतना जरूर याद है कि शादी के दिन ही यह घटना घटी थी।

मैंने पूछा—क्या आप कभी बादामतल्ले में रही हैं? यह प्रश्न सुनकर वह महिला जैसे मुग्ध हो उठीं।

एक-एक करके लोग आते थे और सवालों के जवाब देकर नियमानुसार चले जाते थे। गर्ल्स स्कूल की टीचरशिप के लिए मैं सिलेक्शन हो रहा था। बहुत-सी दरख्वास्तें आयी थीं। बी० ए० सभी थे। सभी को दूसरे स्कूलों में पढ़ाने का अनुभव भी था। पर फिर भी सबके इन्टरव्यू का जिम्मा मेरे ही ऊपर था।

स्कूल के सैक्रेटरी भुवन बाबू छुट्टी पर थे। जाने के पहले बोले—देखिए, विवाहित टीचर को ही 'प्रिफ़रेंस' दीजियेगा। अविवाहित तरुणियाँ काम-काज सीखकर अंत में शादी करके नौकरी छोड़ देती हैं।

स्कूल की कमेटी की भी यही राय है। मैं इस मुहल्ले में नया किरायेदार हूँ। भुवन बाबू मेरे पुराने मित्र हैं। कमेटी के मेम्बरों ने सारे कागजात देकर कहा था—पन्द्रह 'कैण्डिडेट' हैं, इनमें से एक को आप चुन लें।

मैंने कहा—आखिर मुझी को सारा भार क्यों सौंप रहे हैं, आप लोगों में से भी कोई एक आदमी होता तो ठीक रहता।

लेकिन अंत में मुझे अकेले ही रहना पड़ा। भुवनबाबू का ही स्कूल है। भुवनबाबू ही उसके सर्वेसर्वा हैं। उन्होंने काफी रुपया खर्च करके बनवाया है।

भुवनबाबू ने कहा—आप इस मुहल्ले के आदमियों को नहीं जानते। यहाँ बड़ी दलबन्दी है।

खैर, मैं अकेले ही इन्टरव्यू ले रहा हूँ। भुवनबाबू की स्वर्गीया पत्नी के नाम पर स्कूल है। बेसिक सैलरी पचहत्तर रुपये। हर साल तीन रुपये का 'इन्क्रीमेण्ट'। बढ़ते-बढ़ते दस साल में एक सौ पाँच हो जाएगा। क्वार्टर फ्री, रोज आठ आने टिफिन। पूजा के समय सभी को पचास-पचास रुपये का पूजा गिफ्ट। कई तरह की सुविधाएँ 'उर्मिला बालिका विद्यालय' की नौकरी में हैं। सब कुछ भुवनबाबू का दान है। सरकारी ग्रान्ट की वह

परवाह नहीं करते। जितना भी रुपया घट जाता है, वह अपनी जेब से दे देते हैं।

मुझसे भुवनबाबू ने कहा था—यह एक अजीब मुहल्ला है भाई, कोई किसी का भला होते नहीं देख सकता। आप नए आए है, धीरे-धीरे सब देख लेंगे।

कुमारी सुलभा हाजरा, कुमारी सुवर्णासेन, कुमारी अर्चना सेन-गुप्ता—आपका नाम ?

श्रीमती इन्दुलेखा देवी।

सिर उठाकर देखा। प्रार्थी लोगों में से एकमात्र विवाहिता स्त्री। उम्र-दराज़ हैं। भारी-भरकम शक्ल। आँख पर चश्मा। गम्भीर मुख। मुख की ओर देखने पर भक्ति भी होती है और भय भी। देखते ही लड़कियाँ ऐसे व्यक्तित्व का लिहाज़ करेंगी। भुवनबाबू ने भी कहा था कि मैरिड कैंडि-डेट ही लूं।

बोला—आपके बाल-बच्चे ?

इन्दुलेखा देवी बोलीं—मेरे बाल-बच्चे नहीं हैं।

—पति क्या करते हैं ?

—मेरे पति नहीं हैं।

चौंक उठा। चौंककर महिला के मुख की ओर देखा। तब क्या यह मैंने ग़लत देखा है! माँग में सिंदूर तो है। माँग भी सिर के बीचोंबीच—दो भाग किये केशों में—ज़रा-सा घूंघट भी है। विवाह के सारे लक्षण तो हैं। मैं जैसे किसी निर्बोध बालक की तरह महिला की ओर अपलक ताकता रह गया। लेकिन केवल थोड़ी ही देर के लिए। इसके बाद खुद को सँभाल लिया। उर्मिला बालिका विद्यालय की शिक्षिका-निर्वाचन का भार मेरे ही ऊपर है। मैं यहाँ किसी विवाह-पात्रा का तो चुनाव करने आया नहीं हूँ। इससे अधिक जानने का आग्रह करना तो मेरा अन्याय है। मेरे लिए इससे अधिक पूछ-ताछ अनुचित है।

और न जाने क्या-क्या सवाल-जवाब करने को रह गया। मेरा सब-कुछ जैसे गड़बड़ा गया। अच्छी-खासी मुश्किल में पड़ गया थोड़ी देर के लिए। इस मामूली-सी बात में भी इतनी उलझन होगी, कौन जानता था कहानी और उपन्यास लिखकर तो अनेक जटिल समस्याओं का समाधा किया है, कल्पना में जीवन की कई जटिल समस्याएँ सुलझाई हैं। लेकि ऐसा भी होगा, यह तो पता ही नहीं था। दरवाज़ा बन्द करके, अपनी मेर कुर्सी पर बैठकर, कलम घिसकर बहुत ख्याति अर्जित की। सभी जानते मैं मानव चरित्र को खूब समझता हूँ। विशेषकर औरतों के स्वभाव को

लेकिन माँग में सिन्दूर रहने पर भी पति के न रहने का रहस्य क्या है? क्या पति ने स्त्री का परित्याग कर दिया है?

बिना सिर उठाए ही उनसे कह दिया—आप बैठिए।

कहानी लिखने में तो कई सुविधाएँ हैं। असंगत बातों को नए ढंग से भी लिखा जा सकता है। काफी समय हाथ में रहता है। ग़लत पंक्तियाँ काटी जा सकती हैं। लेकिन यहाँ!

मैं असमंजस में पड़ा था कि महिला स्वयं ही बोली—मैंने अपने पति को त्याग दिया है।

मैं फिर सोच में पड़ गया। पति को छोड़ दिया है। क्यों, है न उल्टी बात? स्त्री भी क्या कभी पति को छोड़ती है? पति ही स्त्री को त्याग देता है, लेकिन इन्दुलेखा देवी के चेहरे की ओर देखकर मुझे जाने कैसा लगा। जैसे कि कहीं देखा हो। जाना-पहचाना चेहरा हो, पर कुछ याद नहीं आता। लेकिन···लगता है कि बहुत दिन पहले का देखा हुआ चेहरा है।

मैंने पूछा—क्या आप कभी बादामतल्ले में रही हैं?

इस पर मेरी ओर ताककर न जाने क्या कहना चाहकर वे आगा-पीछा करने लगीं।

मैंने कहा—मैं बादामतल्ले में ही था, मेरा बचपन वहीं बीता है, वह मेरा जन्म-स्थान है।

इन्दुलेखा देवी ने कहा—तब तो आप उन लोगों को जरूर जानते होंगे। मेरे पति का नाम···और कुछ कहने की जरूरत नहीं। पल-भर में ही जैसे आकाश-पाताल का चक्कर काट आया। अटल'दा, अटल'दा के पिता, अटल'दा की माँ—सभी जैसे मेरे सामने आ खड़े हुए। अटल'दा की माँ का वह रोना। मुहल्ले के सभी आदमियों का वहाँ इकट्ठा हो जाना। शंख ध्वनि हो रही थी। नौबत बज रही थी। बेला के फूलों की माला आस्तीन में लपेटे बाराती बैठक में जमकर बैठ चुके थे। कोई सिगरेट फूंक रहा था, कोई सर्बत पी रहा था कि ऐसे समय हठात् एक हंगामा-सा हुआ और सब कुछ जैसे थम गया···

एक दिन भुवन बाबू छुट्टी पर से लौटे। बोले—क्या हुआ भाई? कुछ टीप-टाप कर पाए?

मैंने कहा—नहीं, अभी नहीं।

भुवनबाबू बोले—इसमें करने-धरने को क्या है? जिसे भी चाहे एपॉइण्ट कर लें, लोगों के चेहरे देखकर चरित्र समझ सकते हैं, यही समझ कर तो आपको यह काम दिया था।

मैंने कहा—मुझे माफ़ कर दें भुवनबाबू, मैं हार गया, मेरा सारा घमण्ड चूर-चूर हो गया।

—क्यों ?

भुवनबाबू की भी जैसे बोलती बन्द हो गयी। मेरे चेहरे की ओर अपलक दृष्टि से ताकते रहे।

बोले—क्यों ? हार जाने का क्या अर्थ है ? कैसे तुम्हारा घमण्ड चूर-चूर हो गया ?

मैंने कहा—हाँ, भुवनबाबू, हाँ। आप लोग समझते हैं कि केवल साहित्यकार होने से हमें आदमी की पहचान हो जाती है। आप लोगों की यह अटकल ग़लत है। बात बनाकर, ठोक-पीटकर कहानी हम लिख सकते हैं और चेष्टा करने से आप लोग भी ऐसा कर सकते हैं। लेकिन यहाँ तो मैं कुछ भी ठीक नहीं कर पा रहा हूँ। एक को चुना था, बी०ए० पास है, बाल-बच्चे भी नहीं हैं, लेकिन उसने अपने पति को छोड़ दिया है। रखेंगे आप ऐसी टीचर ? बोलिए ?

पति छोड़ दिया है ?

भुवनबाबू इतने दिनों से स्कूल चला रहे हैं। उम्र भी उनकी काफ़ी है। काफ़ी कुछ देखा है उन्होंने। बहुत-सी जगह घूम-फिर आए हैं। बहुत-से आदमियों ने उन्हें ठगा है। उन्होंने भी उनसे सीखा है। उनके जैसा व्यक्ति भी असमंजस में पड़ गया।

मैंने कहा—आप थोड़े दिन सोच-समझ लें—अथवा कमेटी के अन्य मेम्बरों की राय ले लें।

जानता था कि कमेटी-वमेटी कुछ भी नहीं, भुवनबाबू ही स्वयं सब कुछ हैं। फिर भी कमेटी का नाम लिया।

भुवनबाबू ने कहा—जो कुछ करना होगा, मैं ही करूँगा। आप तो सभी को अच्छी तरह से पहचानते नहीं।

मैंने कहा—लेकिन अन्त में कोई दोष निकलने पर मेरे माथे पर न मढ़ें।

भुवनबाबू ने कहा—दोष तो नहीं दूंगा तुम्हें, लेकिन उसने पति को छोड़ा क्यों ?

मैंने कहा—ज़रूर ही पति में कोई दोष रहा होगा ?

—आपने पूछ-ताछ की थी क्या ?

मैंने कहा—वह भी क्या कभी पूछा जाता है कहीं ?

लेकिन भुवनबाबू तो नहीं जानते थे कि मुझे उस बात को पूछने की ज़रूरत नहीं पड़ी। मैं सब कुछ जानता था। तब डायरी नहीं लिखता

था। इसीलिए सही समय और तारीख का पता नहीं है। अन्यथा सभी कुछ मुझे याद आ गया।

याद आ रही है शीतकाल की वह रात्रि। लगता है, माघ महीने में ही अटल'दा का विवाह हुआ था। अटलबिहारी बसु। हममें से तब भला कौन नहीं जानता था उन्हें? बादामतल्ला के सभी लोग आँखों में आश्चर्य भरकर दिखाते—देखो! देखो, लड़का नहीं, जैसे हीरा है।

उसी अटल'दा के विवाह के दिन ही घटना घटी। अटल'दा हमारे क्लब के प्राण थे। सिर्फ क्लब के ही क्यों, मुहल्ले के भी आदर्श। हमारी तरह लगते भी नहीं थे अटल'दा। हर वक्त हाथ में अंग्रेजी की मोटी-मोटी किताबें। छोटी उम्र में उन सब किताबों के नाम देखकर कुछ भी नहीं समझ पाता था। खेल के मैदान में एक बार दिखाई देने पर सकासक पता नहीं वह कहाँ चले जाते। बादामतल्ला तब बहुत पिछड़ी जगह थी। अटल'दा से अगर कभी-कभार पूछता—क्यों, अटल'दा, आज नहीं खेलोगे?

अटल'दा कहते—नहीं रे, आज जरा भवानीपुर जाना होगा।

सुरेशबाबू हेड-मास्टर थे। काफी बड़े आदमी। खद्दर पहनते थे। देह पर खद्दर की चादर ओढ़ते थे। देखने पर हम डर-से जाते थे। लेकिन हठात् यदि कभी अटल'दा स्कूल में आ जाते तो देखना था कि डर का भूत गायब है। निर्भय घुस जाते थे अटल'दा हेड मास्टर के कमरे में। बाहर अटल'दा की आवाज सुनाई पड़ती। गम्भीर और रौबदार आवाज। रोबीली लेकिन मीठी आवाज। हेड-मास्टर भी जैसे स्नेह-भाव से बातचीत करते। किस काम से अटल'दा आते थे, नहीं जानता। क्या सिर्फ स्कूल के हेड-मास्टर के ही पास? मुहल्ले में 'दरिद्र भण्डार' था, अटल'दा ही उसके कर्ता-धर्ता थे। गली-कूचों में जा-जाकर वहाँ से चावल भीख माँग कर लाते थे हम। लाकर 'दरिद्र भण्डार' के कार्यालय में उसे जमा करते। अटल'दा को जैसे थकान नहीं आती थी, उन्हें आराम की जरूरत नहीं थी। हमारे साथ घूम-घूम कर धूप में, बारिश में, पीठ पर चावल लादकर वह लाते। सिर्फ चावल ही नहीं, रुपये-पैसे, कपड़े सभी कुछ जमा होता। वह चावल बादामतल्ले के गरीब लोगों के बीच बाँटा जाता। चुपचाप घर-घर जाकर वह दिया जाता था ताकि किसी को व्यर्थ ही लज्जा न ढोनी पड़े।

उस बार इण्टरमीडिएट का परीक्षा-फल निकला। बादामतल्ले के लोगों ने सुना—अटल'दा को स्कॉलरशिप मिली है, बादामतल्ले के एक-

ात्र लड़के को।

हम सभी अटल'दा के घर गए। अटल'दा को स्कॉलरशिप मिली है। वह तो एक तरह से हमको ही मिली न। अटल'दा तो वादामतल्ले का ही गौरव हैं न। अटल'दा ने सारे वादामतल्ले के लड़कों का मुँह उज्जवल किया है। वादामतल्ला स्कूल से वही प्रथम स्कॉलरशिप है। घर जाकर सुना—अटल'दा नहीं हैं।

अटल'दा के पिता आशुवावू वोले—कल रात से ही वह घर नहीं आया।

अटल'दा घर नहीं आए। हम सव आश्चर्यचकित हो गए थे। अटल'दा सारी रात कहाँ रहते हैं? अटल'दा रात को भी घर से वाहर रहते हैं क्या?

दूसरे दिन क्लव में आए। अटल'दा का चेहरा-मोहरा उतरा हुआ था। वाल विखरे, वेतरतीव। वस क्लव में आते ही खेल के मैदान में जाने की तैयारी करने लगे। सभी लोग अटल'दा के सामने जमा होने लगे। अटल'दा को स्कॉलरशिप मिली है—यह तो साधारण वात नहीं है। वादामतल्ले के इतिहास में ऐसी घटना कभी नहीं घटी। उन्हीं अटल'दा को अपनी आँखों के सामने देख रहा हूँ। यह हम लोगों का सौभाग्य है। अटल'दा ने खुद ही कहा—क्यों रे, क्या मुँह फाड़कर देखता है?

इतनी देर तक जैसे वोलने में अटक रहा था, किन्तु अव अपने को सम्भाल नहीं सका।

मैंने कहा—तुम कल घर नहीं थे अटल'दा?

अटल'दा ने कहा—हाँ, वहुत रात हो गई थी, इसीलिए घर नहीं आ सका।

—हम लोग रात के समय फिर गए थे तुम्हारे घर, तुम कहाँ थे अटल'दा?

अटल'दा वोले—भवानीपुर।

तव भी हम लोगों की पूछताछ नहीं रुकी। परन्तु साहस करके भी हम लोग पूछ नहीं सके, कि अटल'दा भवानीपुर में कहाँ जाते हैं। भवानीपुर के किस मुहल्ले में? वहाँ पर अटल'दा का कौन-सा ऐसा का[र्य] हैं जिन्हें पूरा करते-करते रात हो जाती है और देर हो जाने के कार[ण] आ नहीं पाते हैं। अटल'दा इतने आदर्श युवक हैं कि उनके ऊपर क[िसी] भी सन्देहपूर्ण कल्पना नहीं की जा सकती। अटल'दा हम लोगों [के] क्लव के सेक्रेटरी भी हैं। अटल'दा वादामतल्ला कुल की प्रति[ष्ठा] में चार चाँद लगाने वाले छात्र थे और वादामतल्ला के गौरव

हम लोग भली-भाँति जानते थे कि यह अटल'दा कभी भी, कोई अन्याय करने वाले न थे। मेरी और अटल'दा की उम्र में कोई विशेष अन्तर न था। होगा तो केवल एक-दो वर्ष का। परन्तु अटल'दा का व्यक्तित्व गगनचुम्बी था। अटल'दा की उम्र छोटी थी, लेकिन उनका व्यक्तित्व जैसे सब पर छा जाता था।

हठात् सबकी दृष्टि देखकर अटल'दा अवाक् से हो गए।

बोले—क्या रे, क्या देखता है इस तरह?

अटल'दा के पिता आशुबाबू विशेष पैसे वाले नहीं थे। गली के सकरे रास्ते के बगल में एक टूटा-फूटा मकान है। बाहर वाली ईंट की दीवार से बालू खिसकता रहता है। वही जीर्ण घर था हम लोगों का तीर्थस्थान। उसी घर में था अटल'दा का निवास। वहीं पर एक ऊँची चौकी पर चटाई बिछी रहती थी और चारों तरफ काठ के सस्ते शेल्फ में किताबें सजी रहती थीं। बाद में जितने भी महान लेखकों की किताबें देखीं या पढ़ीं, उन सब के नाम अटल'दा के मुँह से पहले ही सुन चुका था। नूट-हॉमसन, बर्नार्ड शॉ—अल्डुअक्स हक्सले के नाम पहले-पहले अटल'दा के मुँह से ही सुने।

[illegible]

समय रात हो जाया करती थी? वहीं उसी जगह भवानीपुर में अटल'दा ने एक क्लब खोला था। जितने गरीब और दुखी थे, उन सभी के लड़कों को अटल'दा पढ़ाया करते थे। वहीं उन लोगों के लिए एक नाईट स्कूल अटल'दा ने स्थापित किया था। उन्हीं में से किसी एक को हैजा हुआ था—दो दिन और दो रात तक अटल'दा ने उस हैजा-रोगी को बचाने का प्रयत्न किया, लेकिन सफल नहीं हो सके।

अटल'दा की तरफ उस दिन भी टुकुर-टुकुर ताकता रहा और सोचता रहा—निःशब्द, निस्वार्थ कितनी तरफ देखते हैं अटल'दा? चुपचाप कितनी सेवा करते हैं। प्रशंसा नहीं चाहते, प्रचार नहीं चाहते। एक से दूसरे तक पहुँचती यह बात फैलती गई। सभी लोग अटल'दा को मुग्ध-दृष्टि से देखने लगे।

अटल'दा की समझ में सब आता था। लगता, हम लोगों के बादाम-तल्ला स्कूल के हेडमास्टर सुरेशबाबू भी जो कुछ नहीं समझ सकते, उसे भी जैसे अटल'दा समझ जाते। दीवार पर कितने प्रकार के चार्ट हैं। मुँडेर से लोहे की एक रिंग झूला करती थी और इसी रिंग को पकड़कर सबेरे ही

हाथ-मुंह धोकर अटल'दा व्यायाम किया करते थे। इसके वाद थोड़ी देर तक ध्यान किया करते थे। हम लोगों को भी ध्यान करने को कहा करते थे। लेकिन हम लोग कहा करते थे—ध्यान कैसे करेंगे। मंत्र तो जानते नहीं। यह सुन कर अटल'दा हँसा करते थे।

कहा करते—ध्यान के लिए मंत्र की आवश्यकता नहीं पड़ती। हम लोग कहा करते थे—तव ध्यान कैसे करेंगे ?

अटल'दा कहते—दीवार में पेंसिल से एक गोल निशान वनाकर उसी की तरफ एकटक देखना, आँखें मत वन्द करना।

'यह देख, ऐसे करके'—कहकर अटल'दा चौकी के ऊपर की चटाई पर पद्मासन लगाकर वैठ जाते। उसके वाद दीवार पर लगे लाल निशान की ओर अपलक कुछ देर तक देखते रहते।

उसके वाद कहा—पहले-पहल इसी तरह पाँच या दस सैकेण्ड तक देखते रहना। उसके वाद, एक मिनट दो मिनट करके वढ़ाना। अभ्यास हो जाने पर कष्ट नहीं होगा।

मैंने कहा—तुम कव तक देखते रहते हो अटल'दा ?

अटल'दा ने कहा—मैं क्या वैसा कर सकता हूँ, अभी भी वहुत दिन तक अभ्यास करना होगा। वहुत मुश्किल काम है। मैंने कहा—ऐसा करने से क्या होगा ?

अटल'दा ने कहा—इससे मन की क्षमता वढ़ेगी। अन्त में ऐसा होगा कि तुम चार-पाँच दिन तक विना खाये भी रह सकते हो। शरीर दुर्वल नहीं होगा, इच्छा होने पर आकाश तक में उड़ सकोगे, समुद्र के भीतर घण्टों तक विन-डूवे रह सकोगे।

—तुम ऐसा कर सकते हो, अटल' दा ?

इस पर अटल'दा हँस दिया करते थे।

कहते—वह क्या इतना सरल है ? वर्षों तक तपस्या करने के वाद कहीं सिद्धि प्राप्त होती है। लेकिन एक वार सिद्धि प्राप्त हो जाये तो मोटी से मोटी किताव भी एक वार पढ़ने से ही याद हो जायेगी। तव देखना—तुम्हारी आँखों से ज्योति निकल रही होगी। तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध कोई कुछ नहीं कर सकेगा। तुम किसी से कुछ भी करा सकोगे। यही करके मैं परीक्षा में प्रथम आता हूँ। मैं तो अधिक नहीं पढ़ता, लेकिन दूसरे लड़के जो पचास वार पढ़कर याद करते हैं उसे मैं एक ही वार पढ़कर याद कर लेता हूँ।

मैंने कहा—मैं भी तुम्हारी तरह करूँगा अटल' दा।

अटल'दा ने कहा—परन्तु वह करने के लिए ब्रह्मचर्य का पालन करना

आवश्यक है। ब्रह्मचर्य पालन नहीं करने में कुछ नहीं होगा, वरना उल्टा फल निकलेगा।

—अवाक् हो गया मैं।

उल्टा परिणाम होगा ?

हाँ, ब्रह्मचर्य पालन के बिना ध्यान-ध्यान करने में हार्टफेल हो जायेगा।

अटल'दा की बातों को सुनकर मैं सिहर गया।

अटल'दा फिर बोलने लगे—एकदम मर जाओगे। कितने लोग ऐसा करते हुए मर गये हैं, अथवा थ्यारनिसिस…।

मैंने कहा—ब्रह्मचर्य का पालन किस प्रकार करना होगा ?

अटल'दा ने कहा—लड़कियों की तरफ एक बार भी मुँह उठाकर मत देखना। प्रत्येक लड़की को अपनी माताकी तरह ग्रहण करना। तुमको पढ़ने के लिए एक किताब दूँगा, जिसे स्वामी विवेकानन्द ने लिखा है। स्वामी विवेकानन्द की ही किताब को पढ़कर मैंने भी यह सब सीखा है। विचित्र आदमी था वह। एक नज़र देखने पर ही उन्हें पूरी पुस्तक याद हो जाती थी। जीवन-भर स्टार थियेटर के फुटपाथ की ओर तक वे नहीं गए थे।

मैंने कहा—क्यों ?

—वहाँ थियेटर में लड़कियों का अड्डा जो है।

अटल'दा के घर में बैठे-बैठे मैं अपने-आपको बहुत छोटा समझने लगा था। केवल मन में आता था कि किस तरह अटल'दा की तरह लिखाई-पढ़ाई में, स्वभाव में और चरित्र में आदर्श बनूँगा। वह एक दिन हम लोगों के यहाँ आए। क्लब के सभी लड़कों की आशा थी कि एक दिन वे सभी अटल'दा की तरह होंगे। हम लोग सभी अटल'दा की तरह बाल सँवारते तथा उनकी ही तरह धोती और कमीज़ पहनते थे। अपने पढ़ने के कमरेको भी हम लोग अटल'दा के कमरे की तरह सजाने की कोशिश करते। नूट हॉमसन, अरडुअस हक्सले, रम्यन तथा बर्नार्ड शॉ की किताबें खरीदकर सजाते। विवेकानन्द की शिकागो-वक्तृता वाली किताब पढ़ते, 'ब्रह्मचर्य' पढ़ते। अब समझ में आया था कि ब्रह्मचर्य कितनी कठोर चीज है।

अटल'दा कहते—मन में खराब बात आते ही दुर्गा माँ की याद करना, शरीर ठीक रखना। देखना, यदि शरीर ठीक है तो मन कभी भी नहीं गड़बड़ायेगा।

कभी-कभी रात को, बड़े सवेरे उठकर घूमने जाने के पहले, अटल'दा को बुलाने जाया करता। सोचता था कि हो सकता है कि अटल'दा अभी भी सोते हों, क्योंकि शीतकाल आ गया है। गर्म चादर ओढ़कर और नाक

कान ढँककर बाहर निकला। किन्तु ज्योंही अटल'दा के घर के सामने जाकर जंगले से देखा, अटल'दा तब तक तैयार हो गये थे। उसी ठण्ड में दाढ़ी बनाना, स्नान आदि सब समाप्त कर चुके थे। ऐसा लगता था कि अटल'दा ने जप-तप-ध्यान समाप्त कर लिया है और बड़े मनोयोग से एक किताब पढ़ने में निमग्न हैं। खूब याद है कि हम लोग कभी भी अटल'दा को भोर की वेला में उठने में नहीं हरा सकते थे।

वही अटल'दा आगे चलकर और भी बड़े हुए। कॉलेज की परीक्षा में प्रथम आए। हम लोग तब अटल'दा को कम ही देख पाते थे। बादामतल्ला को छोड़कर वह और भी अधिक व्यापक कामों में व्यस्त हो गए थे। कब कॉलेज जाते हैं और कब वहाँ से आते हैं, किसी को पता ही न चलता था। विद्यालय की छुट्टी होने पर भी हम लोगों के क्लब में वे रोज़ नहीं आ सकते थे। यहाँ तक कि घर पर भी वे समयानुकूल नहीं पहुँच पाते थे।

कभी पूछ बैठता—कल कहाँ थे अटल'दा? तो अटल'दा उत्तर देते—एक सभा में गया था। रोज़ ही एक न एक सभा में जाना पड़ता है। प्रायः रोज़ ही काम रहता है। मैं सोचा करता – कितने कामों को अर्पित मनुष्य हैं अटल'दा। केवल हम लोगों के क्लब को लेकर ही तो उनका काम नहीं चलेगा।

अटल'दा कहते—मैं आ नहीं पाता तो क्या तुम लोगों का काम बन्द हो जाएगा? तुम लोग ठीक तरह से काम चलाते चलो।

काम तो हम लोगों का ठीक ही चलता रहता। हम लोगों का काम अटल'दा का काम जो था।

अटल'दा कभी भी अकस्मात् आकर हाज़िर हो जाया करते थे। फिर कुछ दिन तक नहीं भी आ पाते थे। सुबह का आना भी बन्द हो गया था कुछ दिनों के लिए। अटल'दा कह चुके थे, अभी समय नहीं है उनके पास। अभी उन्हें बहुत काम करना पड़ा है।

तब बादामतल्ले को छोड़कर अटल'दा और भी दूर जा बसे थे। कॉलेज के दोस्तों के बीच अटल'दा ने नया काम शुरू कर दिया था। उस समय हम लोगों के भी मैट्रिक परीक्षा देने के दिन थे। हम लोग भी नये जोशो-खरोश के साथ ध्यान देकर पढ़ाई में जुटे थे।

एकाध बार अटल'दा से भेंट होने पर वे स्वयं आगे बढ़ आते और पूछते—क्यों पढ़ाई कैसी चल रही है?

मैं कहा करता था—बहुत डर लग रहा है अटल'दा।

—डर? किस बात का डर?

मैं कहता था—तुम्हारी तरह मेरा दिमाग़ थोड़े ही है अटल'दा।

अटल'दा कहा करते—दिमाग क्या भगवान् देते हैं किसी को ? दिमाग तो खुद तैयार करना पड़ता है। स्वामी विवेकानन्द का दिमाग क्या हम लोगों से भिन्न था ? साधना करनी होगी, मन लगाना होगा, तब जाकर यह सब होता है। कठोर ब्रह्मचर्य की आवश्यकता पड़ती है। तब कोई तुम्हें रोक नहीं सकता। जो भी कुछ पढ़ोगे, अपने-आप सब मन में उभर आयेगा। उस नियम का पालन करते हो ?

—कौन नियम ?

—वही जो ध्यान करने को कहा था ?

मैंने कहा—थोड़ा तो करता हूँ लेकिन रोज नहीं हो पाता। सुबह-सुबह नींद नहीं टूटती और देर हो जाती है।

—क्यों ?

मैंने कहा—रात को अधिक पढ़ता हूँ न, इसी से सुबह नींद नहीं टूट पाती।

अटल'दा ने पूछा—कितने घण्टे सोते हो ?

अटल'दा के सामने जाने में लज्जा होने लगी। अपनी शक्ति और सामर्थ्य की सीमा देखकर जैसे स्वयं लज्जित हो उठता। अटल'दा तो प्रतिभाशाली हैं। हम लोग तो उनके सामने तुच्छ हैं। हम लोग भला कैसे उनके सामने मुँह दिखा सकते हैं ? रेखागणित की एक थ्योरम सिद्ध करने में हम लोग परेशान हो उठते हैं। एक पन्ना दस बार पढ़ने पर भी याद न होता। हम लोगों की क्षमता ही भला कितनी है ? रास्ते में किसी सुन्दर चेहरे को देखते ही तो मन चंचल हो उठता है। हम लोगों का भला कितना संयम है और कितना ब्रह्मचर्य ? खुद को ही धिक्कारने को मन करता है। हम लोग भी क्या अटल'दा की तरह रूपसी तरुणी को देखने पर उसे माँ की की तरह ग्रहण कर सकते हैं ? हम लोग कितने दुर्बल हैं ? हम लोगों चरित्र कितना ओछा और छोटा है। कभी-कभी रात को देखता कि बहुत रात गये अटल'दा हाथ में मोटी-मोटी किताबें लिए दनदनाते हुए घर की ओर चले जा रहे हैं कि हम लोगों को देखकर हठात् खड़े हो जाते।

कहते थे—क्यों रे, इतनी रात गये यहाँ ?

मैं कहता—डॉक्टर के यहाँ गया था दवाई लेने, पिताजी के लिए। परन्तु तुमको किस कारण से देरी हो गई ?

अटल'दा कहते—मुझे तो लौटते समय आजकल ऐसे ही हो जाया करती है।

मैं कहता—तो क्या इतनी रात ? अब तो रात के नौ बज रहे

अटल'दा कहते—हाँ, कभी-कभी इससे भी अधिक रात हो

मैं कहता—क्यों अटल'दा, रात क्यों हो जाती है ?

अटल'दा कहते—आजकल भवानीपुर से एलगिन रोड जाना पड़ता है कि नहीं। वहाँ भी तो लड़के नहीं छोड़ते हैं। उसके बाद लाइब्रेरी जाना होता है—एशियाटिक सोसाइटी की लाइब्रेरी में बहुत समय देना होता है। उसके बाद ज़रा रुककर बोलते—यह देखो, ये तीन किताबें लेकर जा रहा हूँ न आज, यह सब आज रात को पढ़कर कल सुबह ही वापिस लौटानी होंगी।

मैं और भी अवाक् रह जाता। इतनी मोटी-मोटी तीन किताबें एक रात में कैसे खतम कर देंगे अटल'दा। और कब किताब पढ़ेंगे और कब सोयेंगे ? अटल'दा कीक्षमता अपार थी और उनकी स्मरण-शक्ति भी अपूर्व थी। बादामतल्ले के लोग जानते थे कि आशुबाबू का लड़का अटल एक दिन बादामतल्ले का गौरव और ऊँचा कर देगा। मैट्रिक तथा इण्टरमीडियेट में उसे स्कॉलरशिप मिली है। जितने दिनों तक कॉलेज में पढ़ता रहेगा, उतने दिनों तक उसे स्कॉलरशिप मिलती रहेगी। वह लड़का कभी भी बादामतल्ला को बदनाम नहीं करेगा। और सच ही इस प्रकार अटल'दा ने एक दिन बी० ए० पास कर लिया।

आज उन बीते हुए पुराने दिनों की याद करके बातें करते हुए जैसे हँसी आ रही है। उस दिन तो हम लोग वही जानते थे जो बचपन की किताबों में ईश्वरचन्द्र विद्यासागर जैसे विद्वानों ने लिखा है। उसे ही वेद-वाक्य समझकर उसी पर विश्वास किया करते थे। तब तो केवल यही विश्वास करते थे कि जीवन में उन्नति करने के लिए, प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिए, सिर्फ़ लिखाई-पढ़ाई में प्रथम आना ही काफ़ी है। लेकिन जीवन में कभी स्कालरशिप का मिलना तो दूभर, साधारण रूप से परीक्षा पास करने में भी हमारे प्राण निकल जाते थे। इसलिए हम समझते थे कि हम लोग कुछ भी नहीं कर सकेंगे। जयमाला तो केवल अटल'दा को ही प्राप्त होगी। मैं ही क्या बादामतल्ले के सभी लोग यही समझते थे। प्रशंसा-पूर्ण दृष्टि से सब लोग उनकी ओर आँखें फाड़कर देखा करते थे; कैसा चमत्कारी लड़का है, कहीं भी विलास नहीं, कुछ भीअहंकार नहीं, बिल्कुल सीधा-सादा। विद्वत्ता और प्रतिष्ठा में कितना ऊँचा। कुछ समय बाद सभी के सिर का मुकुट बन जायेगा। आशुबाबू का मुख उज्जवल करेगा। और अपनी जाति के सभी लोगों का नाम भी उज्जवल करेगा। लिखाई-पढ़ाई ही जब संसार के ज्ञान और प्रतिष्ठा की एकमात्र कसौटी है तो अटल'दा को भला कौन रोक सकता है ?

मुहल्ले के किसी वृद्ध हितैषी ने कहा—अब अपने लड़के को विलायत भेज दीजिये आशुबाबू, बैरिस्ट्री पढ़ने के लिए।

किसी ने कहा—क्यों, रुड़की भेज दीजिये, इंजीनियरिंग खराब है क्या?

फिर किसी ने कहा—पैसा है डॉक्टरी में—डॉक्टर कितने हैं देश में?

आशुबाबू बोले—मैं क्या बोलूँ? मुझे तो लड़के की पढ़ाई में एक पैसा भी खर्च नहीं करना पड़ा। वह अपने स्कॉलरशिप के पैसों से ही अपनी पढ़ाई का खर्च चला रहा है। उसकी अपनी इच्छा जिधर होगी, वह उधर ही जायेगा। वह तो कहता है कि प्रोफेसरी करेगा।

—लेकिन प्रोफेसरी में क्या रखा है?

यह उस समय की बात है जब हम लोग इण्टर पास करके बी० ए० में पढ़ रहे थे। हठात् एक दिन सुना कि अटल'दा का विवाह हो रहा है। अटल'दा एम० ए० में फ़र्स्ट क्लास फर्स्ट होकर विलायत जाने की व्यवस्था कर रहे थे कि अचानक यह समाचार सुनने को मिला कि एक विख्यात बड़े आदमी की लड़की के साथ अटल'दा का विवाह हो रहा है। अलीपुर के बहुत बड़े आदमी हैं। हम लोगों ने सो दूर से घर ही देखा है। भीतर कभी भी नहीं गये। बाहर दरवान बन्दूक लेकर खड़ा रहता है। बड़े बाजार में लोहे का कारोबार है। परिवार मामूली है। बस, दो प्राणी और केवल एक लड़की। लेकिन अटल'दा के गरीब होने के बावजूद भी केवल अच्छे गुणों के कारण ही वे लोग यह विवाह कर रहे हैं। लड़के के विलायत जाने का खर्च भी वे ही लोग देंगे। केवल यही नहीं, उन लोगों के बाद सारे धन के उत्तराधिकारी भी अटल'दा ही होंगे।

लेकिन मनुष्य के जीवन में भाग्य का उदय कब और किस प्रकार हो सकता है, नहीं कहा जा सकता।

अटल'दा ही क्या जानते थे? अटल'दा की स्त्री भी नहीं जानती थी न बादामतल्ला के लोग ही जानते थे और न ही हम लोग जान पाये थे।

विवाह के ही दिन यह घटना घटी।

इन्दुलेखा देवी की दरख्वास्त, उनका चेहरा, उनकी माँग का सिन्दूर, उनका घूँघट, सब कुछ मुझे जैसे काठ का उल्लू बना गये। आखिर इतने लोगों के रहते हुए मेरे ही ऊपर उनकी नौकरी का भार पड़ेगा—यह तो आश्चर्य है। मैं अटल'दा के बारे में विचार करूँगा। मैं ही अटल'दा का भाग्य-नियन्ता बनूँगा। यह कैसा परिहास है? आज अटल'दा को सामने पाकर समझा-बुझा लेना। अटल'दा में प्रतिभा, विद्या, प्रतिष्ठा या ज्ञान किसी भी वस्तु की तो कमी नहीं थी। याद आता है—अटल'दा को जब

देखा था तो मेरी आँखें छलछला आयीं थीं। उनका वह सुन्दर मुखड़ा कहाँ गया ? सीने की हड्डियाँ जैसे एक-एक करके गिनी जा सकती हैं।

घाटशिला के एक टिन-शेड के चबूतरे पर बैठकर चबेना फाँक रहे थे वह।

अटल'दा ने कहा था—क्यों, क्या हुआ मुझे ?

मैंने कहा था—तुम्हारी देह तो बिल्कुल टूट गयी है। कितने दुर्बल हो गये हो तुम ?

अटल'दा ने कहा था—उससे क्या हुआ, मन तो नहीं टूटा मेरा, मन के हारे हार है, मन के जीते जीत।

तब मैंने कहा था—तुम्हारे प्रति कितनी बड़ी आशा थी हम लोगों की ? तुम कितने बड़े होते, हम तुम्हारे प्रति कितना गर्व अनुभव…

अचानक अटल'दा चबेना चबाते हुए रुके और बोले—अजी ओ, सुनती हो ? कहाँ गयीं तुम ?

कहकर पास झाँककर देखा। आवाज़ सुनकर घर के भीतर से अटल'दा की स्त्री निकल आयी।

अटल'दा ने कहा—इन्हें प्रणाम कर, तेरी भाभी हैं।

मन जैसे ज़हर से भर गया। पर सोचा प्रणाम तो करना ही होगा। काला-कलूटा दुबला चेहरा। आँखों पर चश्मा भी लगाया है। हाथों में दो-दो सोने की चूड़ियाँ। लगा कि रसोई से उठकर चली आयी है। मिल की एक मैली-सी मोटी साड़ी पहने हुए थीं।

हाथ उठाकर प्रणाम किया।

अटल'दा ने कहा—इसका नाम बताने पर पहचान लोगी। हमारे बादामतल्ला का ही लड़का है। यहाँ की साहित्यिक सभा में सभापति होकर आया है। तुम भी चबेना फाँकोगे ?

ग़रीबी के कारण नहीं, मैली साड़ी के कारण भी नहीं, टिन-शेड के उस घर के कारण भी नहीं, लेकिन मेरे मन में उस दिन कुछ ऐसा हुआ था कि यहाँ, इस अवस्था में न आना ही ठीक होता।

अटल'दा को इस हालत में देखना जैसे मैं नहीं चाहता था। जिस अटल'दा को हमारे मुहल्ले के सभी लोग आदर्श मानते थे, वही यहाँ घाटशिला में इस बदतर हालत में मुदर्रिस होकर पड़ा हुआ है। यह अटल'दा क्या नहीं हो सकते थे ? सभी लोगों ने कितनी आशा की थी। उनके ससुर के पास ही बेशुमार दौलत थी। लोहे के सारे कारोबार के मालिक यही अटल'दा तो होते, अकेले ही। क्यों सब कुछ खो दिया अटल'दा ने ? क्या इसे सिर्फ भाग्य ही कहेंगे ? विवाह के एक दिन पहले तक भी कोई कुछ नहीं जान पाया।

हम लोग भी नहीं जान सके।

तभी मैंने कहा था—अटल'दा के विवाह के दिन ही यह घटना घटी।

उस समय डायरी नहीं लिखा करता था। इसलिए ठीक तारीख तो याद नहीं है। केवल इतना याद है कि हम लोग न्योता खाने के लिये गये थे। बादामतल्ले का कोई भी आदमी नहीं छूटा था उस निमंत्रण से। बहुत बड़े आदमी का घर था। रोशन-चौकी, शहनाई-नौबत, फूल-माला, बैण्ड-बाजा। सामने का रास्ता मोटर-कारों से भर गया था। हम लोग बाराती थे। बस से जाकर वहाँ हाजिर हो गये। साथ में आशुबाबू, नाऊ, पुरोहित और सभी। सारी की सारी मोटर फूलों से सजी। अटल'दा को देखकर मन में कैसी नाराजी-सी हो रही थी।

आशुबाबू ने कहा—अटल तो किसी तरह भी राजी नहीं हो रहा था। उसने कहा था—इतने साज-सरजाम, ताम-झाम की क्या जरूरत थी ? इसके बग़ैर भी तो काम चल सकता था।

अटल'दा अपने विवाह के एक दिन पहले भी कुछ नहीं जान सके थे। वह तो राँची गये थे। वहीं से हम लोगों के पास एक चिट्ठी लिखी थी। उन्होंने बंगालियों के चरित्र के बारे में लिखा था। हमारी रीढ़ की हड्डी टेढ़ी हो गयी है। इसे ठीक करना होगा। इसे ठीक नहीं करने पर बंगाली जाति पिछड़ जायेगी। दूसरे देशों के लोग कितनी तेजी से आगे बढ़ते जा रहे हैं। तुम लोग आदमी हो, हूँह। कथनी और करनी में एक होना होगा। बंगाली चरित्र का यही तो दोष है। मैं बाहर घूमकर देख चुका हूँ—वे हमारी तरह निष्ठावान और विश्वासी भले न हों, पर परिश्रमी हैं, उद्यमी हैं। इन लोगों के बीच एकता है, जिसका हम लोगों में अभाव है।

मैं लौट आने पर तुम लोगों को क्लब में सब कुछ बताऊँगा। हमें नये सिरे से सोचना होगा। शिक्षा ही यदि सार्थक न हो तो जिन्दगी की सारी मेहनत बेकार है।

और भी बहुत-सी बातें लिखी थीं अटल'दा ने अपने उस पत्र में।

इस तरह कथनी और करनी में अटल'दा की तरह एक जैसा व्यक्तित्व भला किसका होगा। तभी सुना कि अटल'दा की शादी हो रही है। जिस दिन अटल'दा राँची से लौटकर आये, उस दिन हम लोग भी उनके घर के सामने इन्तज़ार कर रहे थे।

मैंने पूछा— कल तो तुम्हारा विवाह है अटल'दा।

यह बात सुनकर अटल'दा जैसे चौंक उठे। इसके बाद वे भीतर घर में चले गये। घर के भीतर क्या हुआ, नहीं पता। हम लोग तो बाकायदा सज-धज कर शादी के दिन बाराती के रूप में न्योता खाने पहुँचे। सभी को

पहले एक-एक गिलास शर्बत मिला। सिर पर पगड़ी बाँधे खानसामा और वेयरे घूम रहे थे। हाथों में तश्तरियाँ थीं जिनमें पान-सिगरेट, दियासलाई और आइसक्रीम। वादामतल्ले के सभी लोग वाराती वनकर आये थे। आशुवावू के पहले लड़के की शादी है—उन्होंने किसी को नहीं छोड़ा। लड़की वाले भी वहुत वड़े आदमी थे। उन लोगों पर भी इसका कोई असर नही पड़ा।

अटल'दा को एक मखमल के सिंहासन पर वैठाया गया था...कितने सुन्दर लग रहे थे वह। उस समय सभी लोग अटल'दा को देखकर मुग्ध हो गये थे। चेहरे-मोहरे, सूरत-सीरत की ऐसी गढ़न, ऐसा पुरुषोचित मुखड़ा गोरा-चिट्टा दिपता रंग। सिल्क का कुर्ता पहने हुए अटल'दा महफ़िल में ऐसे सुशोभित हो रहे थे जैसे अपने दरवार में इन्द्र। कन्यापक्ष वाले अटल'दा को भीतर लिवा ले गये।

पहले वरण होगा, फिर कन्या-सम्प्रदान। शंख वज उठे। कानों में शंख-ध्वनि सुनाई पड़ी।

इसके वाद ही भोजन का वुलावा आ गया। सामने के वगीचे में मेज कुर्सी सजाकर खाने-पीने की व्यवस्था की गयी है। पूरी-मांस, चाय, कट-लेट—सभी कुछ है। वड़े आदमी का घर ठहरा। हम लोगों का अधिकार जैसे अटल'दा के ऊपर है, वैसे ही उनकी ससुराल पर भी है। खूव वड़े वड़े गर्मागर्म कटलेट परोस रहे थे वे लोग, और एक-एक कौर में ही हम लोग उसे उड़ाये जा रहे थे। अटल'दा एक दिन इसी घर के मालिक होंगे। मुहल्ले के वहुत-से लोग मुँह वाये तक रहे थे। क्यों नहीं होगा मालिक ? ऐसा वेटा किस पिता को नसीव होता है ? इसके वाद अटल'दा कितने वड़े होंगे और कितने भाग्यवान होंगे। यह तो हमारे लिए भी खुशी की वात है। अटल'दा के वड़े आदमी होने का मतलव है हमारे क्लव का वड़ा होना, हमारे क्लव का अपना घर होगा। और मेम्वर वढ़ेंगे। वादामतल्ला के अलावा भवानीपुर, कालीघाट, एलगिन रोड के लड़के तक इस क्लव में आयेंगे। खाते समय यही सव वातें सोच रहा था कि यकायक...

यकायक शोर-गुल सुनाई पड़ा।

भीतर घर में शोर-शरावा हो रहा था। पता नहीं किसने किसको ज़ोर से चीखकर पुकारा।

उधर विवाह की शंख-ध्वनि। हो सकता है कन्या-दान हो जाये... कि इसी वीच में किसी गड़वड़ी से सव कुछ रुक गया।

जो लोग दही परोस रहे थे, वे दही लेने गये तो फिर लौटे ही नहीं।

कमल'दा ने खाते-खाते कहा—क्यों रे, मिठाइयाँ कहाँ गईं ?

बिशु'दा ने कहा—भीतर कुछ गड़बड़ झाला-सा सुनाई पड़ता है।
शादी ब्याह में तो ऐसा होना ही रहता है। शोर-शराबा, हल्ला-गुल्ला नहीं हो तो शादी भला शादी कैसे लगेगी? अनगिनत लोग, रिश्तेदारों और दोस्तों के अलावा बराती भी तो आये हैं। हल्ला-गुल्ला तो होगा ही। काफी देर तक बैठे रहने पर भी कोई परोसने वाला नहीं आ रहा था।
अटल'दा के पिता आशुबाबू को दूर से देखा। वे भी उत्तेजित-से लगे।
वह इधर से उधर चले गये तो उनके पीछे-पीछे कुछ आदमी भी गये। जो लोग हमारे साथ बैठे थे वे भी टेबुल छोड़ कर उसी तरफ चल पड़े।
हम लोग भी उठने को ही थे कि बिशु'दा ने कहा—चलो भाई, देख आएँ, मामला कुछ गड़बड़ नजर आता है।
हड़बड़ा कर सभी दौड़ पड़े।

सममरमर की बहुत बड़ी इमारत। बगीचे से उठकर हम लोग बरामदे की ओर दौड़े। सीढ़ियों से ऊपर की ओर चले। सारा घर फूलों की सुगन्ध से महक रहा था। मखमल और जरी के काम से सजे झालरदार पर्दों की बहार। बहुत बराती इधर ही आ रहे थे, सभी उत्तेजित।
बिशु'दा ने कहा—जरूर कोई गड़बड़ी है।
सामने और भीड़ थी।
भीड़ ठेल-ठाल कर हम आगे बढ़े। सदर हाल के दरवाजे के सामने भी भीड़। भीतर से हवन की गन्ध आ रही थी। अटल'दा के गले की आवाज भी सुनाई पड़ी जैसे।
इसके बाद जैसे किसी लड़की की आवाज सुनाई पड़ी।
और भी कुतूहल बढ़ा। भीड़ ठेलकर भीतर जाने की कोशिश करने लगा।
बिशु'दा ने कहा—मेरे पीछे-पीछे तुम लोग घुस आओ। देखा तो काठ मार गया मुझे।
अभी भी कन्यादान बाकी था
हवन की अग्नि के सामने लाल बनारसी साड़ी पहने हुए नव-वधू अटल'दा के हाथ पर हाथ रखे हुए थी। कन्या के पिता धोती पहने बैठ चुके थे, आशुबाबू भी सामने थे। सभी ने सामने देखा कि एक दूसरी लड़की खड़ी है। उसके सिर पर भी घूंघट है। एक शान्तिपुरी सूती साड़ी उसकी देह पर लिपटी हुई है। सिर्फ उसका पिछला भाग ही देख पा रहा था।
जरा-सा पास जाते ही उसका चेहरा देखा।
सिर्फ चेहरा ही नहीं। पूरा शरीर।
हाथों में चूड़ियाँ। कानों में पतले इयररिंग। दुबली-पतली एक सांवली

लड़की। आँखें जैसे उसकी जल रही थीं।

मैंने पूछा—विशु दा कौन है यह लड़की ?

विशु दा ने कहा – चुप रह तो, सुनने दे।

लड़की कह रही थी—ये मेरे पति हैं।

आशुबाबू ने कहा—कौन है तुम्हारा पति, अटल ?

—हाँ, मेरा विवाह इन्हीं के साथ हुआ है।

विवाह। आशुबाबू जैसे गुस्से से पागल हो उठे। सीधे आदमी हैं आशु-बाबू। जल्दी वे गुस्सा नहीं करते। बादामतल्ला मुहल्ले वालों ने क्रोधित होते उन्हें कभी नहीं देखा था।

उन्होंने कहा – क्या कह रही हो तुम माँ ? कौन हो तुम ?

लड़की ने कहा—विश्वास नहीं हो तो इन्हीं से पूछिए। कहा उन्होंने—

मान लिया कि तुम्हारे साथ विवाह हुआ है—लेकिन तुम कहोगी और मैं मान बैठूंगा—यह भी नहीं हो सकता। इसके लिए गवाही चाहिए। सबूत चाहिए—तुम हो किसकी लड़की, घर कहाँ है, तुम्हारे पिता का नाम क्या है ? यह सभी कुछ तो जानना होगा।

लड़की ने कहा—सभी कुछ बताने को राजी हूँ मैं।

—लेकिन तुम्हारे राजी होने से क्या होता है। हमारे हाथ में अभी इतना वक्त नहीं है। अभी भी बहुत से बराती खाना खाने के लिए बाक़ी हैं।

लड़की ने कहा—जो होना है, उसे आज ही निपटा लें। मैं कल का इन्तज़ार नहीं कर सकती।

—तो तुम्हारे पिता का नाम ? गोत्र ?

—देखिए, मैं गोत्र-ओत्र नहीं जानती। जानना भी नहीं चाहती। मैं केवल यही जानती हूँ कि हम दोनों का विवाह हुआ है। मैं बहुत दूर से अ
रही हूँ। आखिरी क्षण में खबर पाकर सीधे चली आ रही हूँ, इसी
दौड़ते-दौड़ते आयी हूँ। अभी मैं बिना खाए-पिए हुए...

तो क्या हमारा खाना-पीना हो गया है ? हम लोग भी तो सारे दि
से उपवास किये हुए हैं। जानती हो ?

लड़की ने कहा—आप लोग उपवास किये हैं कि नहीं, वह तो आप
जानें, मुझे इसकी क्या ज़रूरत है।

कन्या के पिता उठ खड़े हुए, बोले—तुम किसकी बेटी हो ? यहाँ
करने आई हो ?

आप लोगों ने मुझे खबर नहीं दी, इसी से मैं खबर पाकर खुद
रही हूँ—लड़की ने कहा।

—लेकिन इस समय किस लिए आयी हो ? अब तो विवाह हो गया है मेरी लड़की के साथ। पहले बताने से कुछ हो सकता था।

पहले क्या जानती थी मैं, आप लोगों ने मुझे बताया क्यों नहीं ?

कन्यापक्ष के वर्ता हँस उठे। उन्होंने कहा—जरा इसकी बात तो सुनो! अगर पहले से पता होता, तो क्या तुम्हें नहीं सूचित करता ?

आशुबाबू ने कहा—माँ, इस समय तो तुम यहाँ से हटो, जो कुछ कहना हो, उसे कल अटल से ही कहना, अटल बहू लेकर घर तो जाएगा ही।

—मैं आज ही जानना चाहती हूँ, मैं कल तक इन्तजार नहीं कर सकती।

अब तक कन्या के पिता का धैर्य चुक गया था। वे बोले—अगर तुम बात नहीं सुनोगी, तो हम लोगों को कुछ दूसरा इन्तजाम करना पड़ेगा।

लड़की भी जैसे जिद्द पर तुल गयी थी।

—जो कुछ करने का इरादा हो, कर लें, मैं भी यही चाहती हूँ।

लड़की के पिता ने कहा—समधी जी, तो इन्तजाम करूँ फिर। क्या कहते हैं आप ?

आशुबाबू ने समझाकर कहा—माँ, क्यों गड़बड़ कर रही हो तुम, अभी तो केवल कन्यादान ही हुआ है। कई अनुष्ठान शेष है, समधी जी भी दिन भर के उपवासे हैं, तुम बाद में आओ, तुम्हारी सारी बातें सुनूँगा।

आशुबाबू ने एक तरह से हाथ जोड़कर ही यह सब कुछ कहा था, लेकिन लड़की तब भी वहीं स्थिर खड़ी रही।

कन्या के पिता ने आवाज लगाई—बहादुर।

सारा घर जैसे काँप उठा। कितनी भारी-भरकम आवाज थी वह।

सारे बाराती चौंक उठे।

पुरोहित महाराज हाथ रोककर होमाग्नि पर दो-चार बूँद घी छिड़क रहे थे। हाल के भीतर कई सौ आदमी आ जुटे थे। पाहुन, बाराती, रिश्तेदार-नातेदार सब लोग दौड़कर इधर ही आ गये थे। सर्वनाश जैसी बात थी। कन्या के पिता को पुत्र-बल नहीं था, पर सम्बन्धियों का बल तो था। रुपये-पैसे का जोर भी था। अटल'दा—हमारे अटल'दा ने यह क्या किया ? हम सभी लोग जैसे पत्थर हो गये थे। कोई बात नहीं फूट रही थी हमारे मुख से। हम सभी अचम्भे में आ गये थे। हम लोगों के अटल'दा, बादामतल्ला के गौरव अटल'दा सारे युवकों के आदर्श अटल दा को ऐसे कलंक में सड़ना। यह क्या सच है ? बादामतल्ले की गंगा में कंठ तक डूबकर भी अगर कोई कसम खाये तो भी हम लोग एतबार नहीं करेंगे।

कमल'दा ने कहा—लड़की का कोई बुरा मतलब लगता है ··

विशु'दा ने कहा—इसे यहाँ से भगा दो, सब ठीक हो जाएगा।

मुझे भी न जाने कैसा गुस्सा आ रहा था। अटल'दा की तमाम जिंदगी बर्बाद करने आई है यह छोकरी। हूँ, यह काली-कलूटी लड़की अटल'दा की बीवी है। और सामने ही बैठी हैं नव-विवाहिता दुलहन। बनारसी साड़ीके घूंघट में हवन की अग्नि के पास बैठने पर जिसका चेहरा दमककर गुलाबी हो उठा है। कितनी सुन्दर दीख पड़ रही है ! और दूसरी ओर यह काली-कलूटी जिसे देखने पर मन घृणा से भर जाता है। यकायक जैसे चारों तरफ भनभनाहट-सी शुरू हो उठी। पर बाद में वही भनभनाहट गड़बड़-झाले में बदल गई। उसी गुल-गपाड़े में कई तरह की राय कई लोगों के मुँह से सुनाई पड़ने लगी।

कोई कहता—छोकरी बदमाश है, बदमाशी की दूसरी जगह और नहीं मिली कहीं।

इसे मारकर भगा दिया जाये तो ठीक रहेगा।

रिश्तेदारों में से किसी ने कहा—मैं पुलिस को टेलीफ़ोन किये दे रहा हूँ।

कन्या के पिता अपना धैर्य खो चुके थे—समधीजी, अब आप क्या कहते हैं ?

आशुबाबू ने कहा—रुकिए समधी जी, मैं ज़रा इसे समझाकर कहूँ तो।

वह लड़की तब भी चुपचाप उदासीन भाव से खड़ी रही।

आशुबाबू ने कहा—बेटी, मैं अटल का पिता हूँ, मैं कहता हूँ कि कल मैं तुम्हारी सारी बातें सुनूंगा, इस समय तो जाओ, यहाँ गड़बड़ करने से क्या लाभ है तुम्हें ?

लड़की ने कहा—मैं यह विवाह नहीं होने दूंगी—

आशुबाबू बोले—लेकिन कन्यादान तो हो ही गया है और कन्यादान का मतलब है विवाह हो जाना।

लड़की ने कहा—नहीं, यह विवाह नहीं हुआ।

पास खड़े किसी व्यक्ति ने चुटकी ली—तुम्हारे कहने से नहीं हुआ। भाग जाओ यहां से···

आशुबाबू ने इशारे से उसे खामोश रहने को कहा और फिर कहना शुरू किया—विवाह नहीं हुआ, इसका मतलब ?

—कारण है, इसी वर के साथ एक बार मेरा विवाह हो चुका है।

—कब हुआ है विवाह ?

लड़की और भी ज़िद पर उतर आई थी, लापरवाही से बोली—आपको सबूत चाहिए ?

आखिर तुम चाहती क्या हो ?—आशुबाबू ने पूछा ।
—मैं उन्हें यहाँ से उठाकर ले जाऊँगी ।
इस बार आशुबाबू तनिक उत्तेजित हो उठे । बोले—इतनी हिम्मत है तुम्हारी ?
कन्या के पिता भी अब तक सब कुछ सहन कर रहे थे, पर इस बार जैसे उनका भी धीरज चूक गया ।
रिश्तेदारों में से कोई बोला—पुलिस को फ़ोन कर दूँ, बड़े चाचाजी ?
मामूली-सी लड़की की यह गुस्ताखी देखकर हम सभी लोग भौंचक्के हो उठे थे । एकाएक लड़की एक और काम कर बैठी ।
चलो तुम, चलो उठो तो—अटल'दा का हाथ पकड़कर खींचते हुए उसने कहा ।
बोलती ही जा रही थी वह—उठो, उठकर मेरे साथ चले आओ । तुमने सोचा होगा कि मुझे कुछ भी पता नहीं चलेगा । पर मेरा नसीब कि मुझे ख़बर लग ही गयी । मेरा सर्वनाश करने जा रहे थे तुम, बोलो तो ।
काठ के उल्लू की तरह हम सब खड़े थे । जैसे हमारी ज़बान तालू में चिपक गई थी । हम लोग सोच रहे थे कि सचमुच क्या अटल'दा ने इस काली-कलूटी लड़की से शादी की है । अगर की ही है, तो क्यों करने गये ? *किस बात का मोह ? आखिर में अटल'दा ने हमारे मुँह पर ऐसी कालिख पोत दी ।*
कन्या के पिता किसी तरह अपने को जब्त किये थे अब तक, इस बार वे नहीं रोक पाये । चीखकर बोले—बहादुर ।

तब तो डायरी नहीं रखता था । दिन, तारीख, घण्टा-मिनट सैकेण्ड का हिसाब नहीं याद है । याद है सिर्फ वह दिन, जब हम सभी बारातो शर्म से मानो मर गये थे । यह क्या किया अटल'दा ने ? अपने मुँह पर कालिख *पोती तो पोती, हम लोगों के मुँह पर भी कालिख पोत दी थी अटल'दा ने।*
सन् १९४२ में—विवाह के कई साल बाद जब घाटशिला में अटल'दा से पुन: भेंट हुई, तो मुझे फिर से सब कुछ याद आ गया ।
घाटशिला गया हुआ था किसी सभा का सभापतित्व करने । देश में तब अकाल से त्राहि-त्राहि मची थी । बॉम्बिंग हो रही थी कलकत्ते पर । तितर-बितर हो गये थे कलकत्ते के लोग । जहाँ भी बन पड़ा था, लोग भाग चुके थे । उस भयंकर समय में भी लड़कों ने पिंड नहीं छोड़ा । आखिरकार जाना ही पड़ा था मुझे घाटशिला ।
घाटशिला में बंगाली काफ़ी थे । बहुतों ने घर-द्वार भी कर लिया है ।

यह बंगाल है और नहीं भी है। कुछ लोग कलकत्ते से भागकर यहाँ आये थे। वे कुछ दिन घाटशिला रहते और कुछ दिन कलकत्ता। ऐसी ही हालत थी उन दिनों। उसी घाटशिला के एक स्कूल की मीटिंग थी।

मैंने सभापतित्व ठीक परम्परागत रूप में निभाया। लच्छेदार आदर्श-भरी बातें की। जैसे सभी लोग भाषण देते हैं, वैसेही फूलों की माला पहनी थी, फोटो भी खिंचवायी थी। लेकिन लौटती बार एक घटना हो गयी।

असिस्टेंट हेडमास्टर अक्षय बाबू ने कहा—हमारे हेडमास्टर के साथ आपकी बातचीत नहीं हुई। वे बहुत बीमार हैं। उनके साथ बातचीत करके आप बहुत प्रसन्न होते···

मैंने पूछा—कौन हैं वे ?

अक्षय बाबू ने कहा—वे ही तो हैं इस स्कूल के प्राण। बीमार हैं बेचारे। उनकी कोशिश से ही तो यह स्कूल इतना आगे बढ़ा है।

इसके बाद थोड़ी देर रुककर बोले—यह देखिए उनकी फ़ोटो।

उधर ताकने पर आश्चर्य-चकित रह गया। दीवार पर फ़्रेम-जड़ी जो फोटो टँगी थी, वह तो अटल'दा की है।

मैंने पूछा—आपके हेडमास्टर का नाम क्या है ?

अक्षय बाबू बोले—अटलविहारी वसु।

याद है टिन के उस घर में बैठे-बैठे मैंने मन ही मन अटल'दा के परिवार का अन्दाज़ लगा लिया था। एक मैली-धुंधली-सी लालटेन, काठ के एक रैक पर देवता की मूर्ति, एक ओर चौकी और दूसरी ओर फटी हुई चटाई। सिरहाने की ओर तेल से भरा मैला-कुचैला तकिया। सारी चौकी पर बिखरी हुई कई तरह की पुस्तकें—उनका कोई पार नहीं।

याद है—मैंने एकबारगी कहा था—अच्छा अटल'दा।

बोल, क्या कहता है भाई, बोल न। अटल'दा ने कहा था।

तुम्हें दुख नहीं होता ?

मेरी ओर ताककर अटल'दा जैसे अवाक् रह गये। शायद मेरा तात्पर्य वह नहीं समझ पाये, लेकिन मैं अपने आँसू नहीं छिपा सका। इस दरिद्रता, इस कुत्सित वातावरण में मेरा जी ऊबने लगा था। कहाँ उस अलीपुर के सुगन्ध-भरे बाग़ीचे वाली संगमरमरी इमारत के मालिक होने की बात, कहाँ विलायत जाने की बात, कहाँ बैरिस्ट्री पढ़कर रोल्स-रायस कार पर घूमने की बात, कहाँ यह कल्पना कि सारे देशवासी अटल'दा की चरण-धूलि लेंगे। बचपन से यही चित्र तो मन में अंकित था। और सिर्फ़ मेरे ही मन में नहीं। बादामतल्ले के सभी लोग तो ऐसा सोचते थे एक दिन। सभी तो जानते थे कि आशुबाबू के बेटे की तकदीर ऊँची है।

आशुबाबू भाग्यवान बेटे के बाप हैं। अब आशुबाबू को हाथ में झोला लेकर बाजार नहीं जाना पड़ेगा। बहुत बड़ा घर बनेगा आशुबाबू का। लड़के के गौरव से पिता का गौरव भी सभी की आँखों में बढ़ेगा। लेकिन बाद में अटल'दा का वही पुराना टूटा-फूटा घर देखना पड़ा। आहिस्ता-आहिस्ता वह घर टूटने लगा, झरने लगा। कई बार अटल'दा के घर के पास से जाते-जाते अचानक रुक जाता। अटल'दा के घर की ओर ताकता। घर की खिड़कियाँ भीतर से बन्द रहतीं —अटल'दा के चले जाने पर एक दिन भी किसी ने खुलते नहीं देखा।

आशुबाबू ठीक पहले की ही तरह बाजार जाया करते।

मैं कहता—अपना थैला मुझे दे दीजिए चाचा जी, मैं पहुँचा दूँगा। लेकिन वे किसी भी तरह थैला नहीं देते।

वे कहते—नहीं-नहीं ठीक है, मैं ले जाऊँगा। और हाँ, कैसे हैं तुम्हारे पिता जी ?

मैं कहता—आप कैसे हैं ?

—ठीक ही हूँ।

मैं पूछता—अटल'दा कहाँ हैं ?

आशुबाबू कहते—पता नहीं बेटा, कहाँ है वह, मुझे एक चिट्ठी तक भी नहीं भेजता।

अटल'दा के घर जाकर देखता कि चाची रसोई में भोजन बना रही हैं। मेरे पैरों की आहट से पीछे घूमकर देखतीं।

कहतीं वे—कौन ?

मैं कहता—मैं हूँ चाची जी।

चाची कहतीं—आओ बेटे, कैसे भूल पड़े ?

मैं चुप रह जाता था। कुछ भी नहीं कह पाता था। इसके बाद चाची जी कहती थीं —अटल को देखने आये हो, वह तो नहीं'''

वह तो नहीं है'''वह तो नहीं है। '''सारे घर में जैसे यही बात गूँजती रहती। वह तो नहीं है। अटल'दा नहीं है, यह बात जैसे कोई भी नहीं भूल पाता था, लेकिन धीरे-धीरे सब कुछ सहने लगता है आदमी। आशुबाबू और चाचीजी भी भूल चले थे। न भूलने पर भला कैसे चलेगा?

कभी देखता कि आशुबाबू पार्क के भीतर के रास्ते पर एक लाठी लेकर धीरे-धीरे चल रहे हैं। सामने जाने पर भी अब नहीं पहचान पाते। आँख से अब अच्छी तरह नहीं देख पाते।

सामने जाकर नमस्कार करता, चरण-धूलि लेता।

वे कहते—कौन हो तुम बेटे ?

मैं कहता—अटल'दा की कोई खबर मिली है ?

वे कहते—ओह, तुम ! नहीं बेटे।

मैं कहता—आप किसी अखबार में विज्ञापन क्यों नहीं देते ?

आशुबाबू हँसने लगते। कुछ भी नहीं कहते।

अन्त में एक दिन रात के आखिरी पहर में खबर मिली कि चाची जी मर गईं। हम लोग उन्हें श्मशान ले गये। पुत्र पास नहीं है इसलिए हमने ही उन्हें आग दी। अन्तिम कृत्य किया। इसके बाद दुनिया फिर पहले की तरह चलने लगी।

आशुबाबू वैसे ही कभी-कभार लाठी लेकर टहलने निकलते।

वे कहते—मुझे अब किस बात का दुख है बेटा।

मैं उन्हें सांत्वना देकर कहा करता—लेकिन अटल'दा का ही कैसा स्वभाव है कि एक बार खबर तक नहीं ली।

इस पर आशुबाबू सिर्फ हँस देते।

वे कहते—खबर न भी मिली तो क्या हुआ, मैं समझ लूंगा कि मेरे कोई बेटा हुआ ही नहीं या बेटा हुआ था, मर गया।

घाटशिला में अटल'दा के पास बैठे-बैठे मेरे मन में सिर्फ यही सब बातें याद आने लगीं। ऐसा कठोर जो हो सकता है, उससे भला क्या कहा जा सकता है ?

अटल'दा की पत्नी एक कप चाय दे गईं।

अटल'दा ने कहा—अजी ओ, सुनो, सुनो।

अटल'दा की स्त्री खड़ी हो गयी। उसकी ओर मुँह उठाकर ताकने का भी साहस नहीं हो पा रहा था। मुँह उठाकर ताकने में भी घृणा हो रही थी। सारे अनर्थ की जड़ यही है अटल'दा की बीवी। क्रोध के मारे मेरे मुँह से एक भी बात नहीं निकल पा रही थी।

अटल'दा ने कहा—ये ही हैं तेरी भाभी जी, प्रणाम कर इन्हें।

इच्छा नहीं हो रही थी, तब भी प्रणाम किया।

भाभी जी ने कहा—आपकी किताबें पढ़ी हैं मैंने, खूब अच्छा लिखते हैं आप।

लेकिन मैं सिर नीचा किए हुए चुप ही रहा।

याद पड़ता है, जब वह बहुत बातें कर रही थीं, उसी बीच मैंने कहा—चाचा जी कैसे हैं, यह भी नहीं पूछा तुमने अटल'दा ?

—चाचा जी ?

चाचा जी का नाम सुनकर अटल'दा कुछ रुक से गये।

मैंने कहा—तुम्हारे पास क्या कुछ भी दया-माया नहीं है अटल'दा ? तुम इतने पत्थर कैसे हो गये ? तुम तो ऐसे नहीं थे।

अटल'दा पता नहीं क्या सोचने लगे यकायक ? जैसे घर की याद हो आयी उन्हें। जैसे इतने दिनों के बाद याददाश्त फिर लौट आयी हो। अटल'दा किताब के पन्नों पर उँगलियाँ फेरते-फेरते न जाने क्या बड़बड़ाने लगे। लगा कि जैसे उनके मन के किसी सोये तार को छेड़ दिया मैंने। उस आघात से जैसे उनका सारा मानस-यन्त्र ही झनझना उठा हो—सितार की तरह।

मैंने फिर कहा—बचपन में तुम्हीं तो हमारे आदर्श थे अटल'दा। तुम्हारे अलावा तो हमारा कोई भी आदर्श नहीं था—यह तो तुम जानते ही हो।

अटल'दा अनमने-से किताब के पन्ने पलटते जा रहे थे।

मैंने कहा—बचपन से ही बादामतरला के हम सभी लोग सोचते थे कि बड़े होकर तुम्हारी तरह बनेंगे—यह तो तुम जानते हो।

अटल'दा तब भी चुप ही रहे। वैसे ही मुँह नीचा किए बैठे रहे।

मैंने कहा—तुम्हारे पिता जी, तुम्हारी माँ को जीवन के अन्तिम काल में कितना कष्ट भोगना पड़ा है। उसे तुम जानते हो ? तुम उसकी कल्पना कर सकते हो ? बोलो, उत्तर दो।

अटल'दा तब भी चुप ही रहे। बल्कि अपना सिर और भी नीचे कर लिया।

मैंने कहा—लेकिन तुम पहले तो ऐसे नहीं थे अटल'दा, तुम तो हमेशा से ये सब चीजें नापसन्द करते थे। जहाँ कहीं भी तुम अंधेरगर्दी देखते थे वहीं अपना सिर तानकर विद्रोह कर उठते थे।

अटल'दा तब भी चुप ही रहे।

मैंने कहा—ऐसे चुप रहने से नहीं चलेगा अटल'दा—तुम्हारे पैरों पड़ता हूँ। मेरी बातों का जवाब दो एक बार।

मैंने फिर कहा—जवाब दो आज कि ऐसा क्यों हुआ ? इसका जिम्मेदार कौन है ? किसके प्रति तुमने कर्तव्य निबाहा है ? कौन है वह ? वह क्या चाचाजी-चाचीजी से भी बड़ा है ? अटल'दा इस बार जैसे छटपटा उठे।

मैंने कहा—डर नहीं है अटल'दा, मैं तुमसे उसका नाम नहीं पूछता—कुछ भी नहीं पूछूँगा।

अटल'दा ने यकायक मेरे दोनों हाथ पकड़ लिए।

कहा उसने—सुन, आज तू मेरे यहाँ ही रह।

मैंने कहा—क्यों ?

अटल'दा ने कहा—तेरी सभी बातों का जवाब दूंगा, तू आज मेरे यहाँ रह जा।

मैंने कहा—अच्छा, आज तुम्हारे यहाँ ही रहूँगा।

अटल'दा ने कहा—क्यों, कोई काम है क्या तेरा? काम-धाम की बात तो नहीं। लेकिन चारों ओर ताककर पता नहीं कैसा संकोच होने लगा। कहाँ रहूँगा ? इसी फटे-मैले-कुचैले बिछौने पर ? इसी घर में ? दो ही कमरे हैं शायद। उस ओर से रसोई की आवाज आ रही है कान में और गन्ध भी आ रही है नाक में, यहाँ रहूँगा ?

अटल'दा ने कहा—आज तुम रहो, एक नई किताब खरीदी है मैंने, यह देख, तुझे पढ़ाऊँगा।

नई किताब पढ़ने का लालच मुझमें नहीं था। लेकिन अटल'दा को नयी किताब का लोभ अभी भी है। मेरा लोभ तो है अटल'दा। क्यों सब कुछ रहने के बावजूद अटल'दा ने गरीबी मोल ली ? किस कारण से ? किसके लिए ? जिसे उस दिन देखा था अलीपुर के उस विवाहोपलक्ष्य में उसी का इतना आकर्षण ? उसी का इतना मोह ? आज भी अंधेरे में मिल की मैली साड़ी पहने हुए उसी का चेहरा तो देखा है। इसके भीतर कौन-सा आकर्षण दिख गया था अटल'दा को। जो अटल'दा भोर-वेला में उठकर, प्राण-शक्ति बढ़ाने के लिए दीवार पर एक काला निशान लगाकर अपलक ताका करते, जो अटल'दा स्वामी विवेकानन्द की पुस्तक 'ब्रह्मचर्य' पढ़कर अपने को ऊँचा उठा ले गये थे—उन्हीं अटल'दा की यह दुर्गति ? स्कूल के हेडमास्टर हुए हैं, अच्छी बात है यह। बच्चों को आदमी बना रहे हैं—यह भी अच्छी बात है। लेकिन खुद ? खुद क्या दुनिया के लोगों के आमने-सामने वह खड़े हो सकते हैं ? आमने-सामने खड़ा होकर कह सकते हैं—मैंने जो कुछ भी किया है सब जायज किया है, जो कुछ भी सोचा है सब ठीक सोचा है।

यकायक अटल'दा ने कहा—तब तेरी भाभी को कह दूं कि तू आज यहीं खाना खा रहा है।

इसके बाद भीतर की ओर आवाज लगायी—अजी ओ, सुनती हो ?

अटल'दा की आवाज सुनकर फिर वही औरत आयी।

अटल'दा ने कहा—सुनती हो, यह भी रहेगा यहाँ आज, समझीं ? मेरे ही कमरे में इसका भी बिस्तर लगा देना।

इसके बाद मेरी ओर ताककर कहा—तुझे थोड़ी तकलीफ़ तो

जरूर…

भाभी जी ने बीच में ही कहा—आप रात को चावल खाते हैं या रोटी ?

मैंने कहा—मेरे लिए अधिक चिन्ता मत कीजिए। आप लोग जो खाते हैं, मैं भी वही खाऊँगा।

भाभी जी हँस पड़ीं।

बोलीं—आप शायद हमारी तकलीफ की बात सोच रहे हैं, रसोई बनाने में स्त्रियों को कष्ट होता है शायद ?

अटल'दा ने कहा—इसके लिए दो बैंगन भी लता लिया, समझी ?

भाभी जी ने कहा—हाँ, तुम्हें तले हुए बैंगन अच्छे लगते हैं इसका मतलब यह तो नहीं कि सभी को अच्छे लगेंगे ?

मैंने बीच में ही कहा—नहीं, नहीं, भाभी जी, आपकी जो मर्जी हो वही कीजिएगा, मेरे खाने में किसी खास चुनाव की जरूरत नहीं।

भाभी जी के चले जाने पर अटल'दा ने कहा—तुम्हें शायद थोड़ी-सी तकलीफ यहाँ होगी।

—नहीं, नहीं, अटल'दा कोई तकलीफ नहीं है। तुम बेकार में परेशान मत होओ।

अटल'दा ने कहा—नहीं, आजकल बहुत मच्छर हो गये हैं यहाँ।

मैंने कहा—मच्छरों को होने दो, आज तुम्हारी सारी कहानी सुनूँगा अटल'दा, क्या हुआ! किसके कारण तुम ऐसे खानाबदोश हो गये हो?

अटल'दा ने कहा—खानाबदोश की तरह घूम रहा हूँ! किसने कहा तुमसे ?

मैंने कहा—तुम क्या यह रहे हो अटल'दा ? क्या तुम मान नहीं आये हो ? तुममें जो प्रतिभा थी, जो शक्ति थी, जो क्षमता थी—तुम्हें तो आज सभी की नजरों में पूज्य होना चाहिए था, सभी के लिए तुम उदाहरण होते।

अटल'दा हँसने लगे। उन्होंने कहा—क्यों, अब क्या सभी की नजरों में गिर गया हूँ ?

मैंने कहा—नहीं गिरे ? तुम तनिक सोचो तो सही, कि तुम क्या हो सकते थे ! तुम्हें किस चीज की कमी थी ?

अटल'दा सिर नीचा किए हुए पता नहीं क्या कुछ सोचने लगे।

फिर बोले—तुम्हें आज रात सब-कुछ बताऊँगा, आज तो है तू यहाँ !

लेकिन आदमी सोचता कुछ और है और होता कुछ और है। नहीं तो

क्या मैं जानता कि इतने दिनों बाद भी अटल'दा की कहानी मैं नहीं सुन पाऊँगा। उस दिन अलीपुर के घर में विवाह के समय की सारी बातें जिस रहस्य के पर्दे में छिपी हैं, वैसे ही घाटशिला के इस स्कूल में मुर्दारसी-ज़िन्दगी की सारी कहानी भी सदा के लिए अनजानी ही रह गयी। अटल'दा को क्या सज़ा मिली थी ज़िन्दगी में! अक्सर मैंने कई अवसरों पर सोचा है। अटल'दा को क्या एक क्षण के लिए भी पछतावा नहीं हुआ है?

लेकिन वह बात जानने के लिए अब कोई उपाय नहीं रहा। इसके लिए कहाँ-कहाँ घूमा हूँ। घाटशिला के स्टेशन से होकर कितनी बार सफ़र किया है, उसका भी कुछ अन्दाज नहीं है। अक्सर मन में आया है कि उतर कर अटल'दा से भेंट करता चलूँ। लेकिन उस मर्मान्तक अनुभव के कारण कभी भी घाटशिला जाने का साहस नहीं हो सका। खत लिखकर खोज-खबर लेने की भी हिम्मत नहीं पड़ी।

वह कहानी आज कहता हूँ।

उस रात यही निश्चय किया था कि घाटशिला में ही रहूँगा। एक ही कमरे में अटल'दा के तख्तपोश पर रात काटूँगा, अटल'दा से उनकी ज़िन्दगी की कहानी सुनूँगा। बस यही इच्छा थी। लेकिन जब हाथ-मुँह धोने के लिए घर से बरामदे की ओर आकर जल की बाल्टी खोज ही रहा था कि भाभी जी पास आयीं।

मैंने पूछा—इसी बाल्टी के पानी से हाथ धो लूँ भाभी जी!

भाभी जी ने कहा—हाँ, लेकिन आप यहाँ आये क्यों?

कण्ठ-स्वर सुनकर चौंक गया। यकायक उनकी आवाज़ जैसे सख्त और सूखी हो उठी।

—क्यों आते हैं आप लोग मेरे घर में? बताइए, क्यों आते हैं?

मैं अवाक्-सा उनके मुँह की ओर ताकता खड़ा रहा। धुँधला चेहरा अँधेरे में बड़ा घिनौना-सा प्रतीत हुआ। फिर वे कहने लगीं—

आप सभी लोग मिलकर मेरा सर्वनाश करना चाहते हैं। मैंने आप लोगों का क्या नुक़सान किया है? क्यों आते हैं यहाँ आप लोग?

मैंने कहा—मुझसे कह रही हैं!

—हाँ, आप सभी लोगों से कह रही हूँ। आप सभी लोग मेरे खिलाफ़ साज़िश कर रहे हैं। मैंने क्या नुक़सान किया है आप लोगों का? अपने पति को साथ लेकर मैंने अपना संसार बसाया, इससे आप लोगों का क्या बिगड़ गया?

मैंने कहा—आप यह क्या कह रही हैं?

भाभी जी बोलीं—क्यों आप कुछ नही समझते ? मेरी यह हालत देखकर भी आप कुछ नही समझ सकते ? मेरी यह फटी साड़ी, यह टूटा हुआ तख्तपोश, यह मैली मसहरी—क्या कुछ भी नही देख पाये आप ? आप लोगों की आँखें नही हैं क्या ? इसके बाद भी यहाँ रहने और खाने का इरादा होता है आप लोगो का ?

सकपकाकर मैंने कहा—लेकिन आपने ही तो थोड़ी देर पहले मुझे रहने, खाने को कहा था।

वे जैसे क्रोधित हो उठी, बोली—आप कुछ भी नही समझते, यही कहना चाहते हैं न, लेकिन यह भी मैं कहे दे रही हूँ कि आप लोग उनका कुछ भी नही पा सकते, बहुत दिनो से मैं उन्हें आप लोगो से बचा-बचाकर अगोर रही हूँ—जो कुछ भी था उनके पास—मैं वह सब खत्म करके ही जाऊँगी।

—इसका मतलब ?

इसका मतलब आप लोग अच्छी तरह समझते हैं। आप लोग समझते हैं कि एक दिन इस दुनिया की चक्की मे पिसकर मैं जब मर जाऊँगी तब आप लोग जिसकी जो चीज है—उसे उसी की गोद में सौंप देंगे लेकिन यह मैं नही होने दूँगी···

मैंने कहा—यह आप क्या कह रही हैं ?

वे बोली,—ठीक ही कह रही हूँ, मैं किसी से डरती हूँ क्या ? मुझे किस बात का डर है ? गरीब की लडकी हूँ तो क्या मैं कुछ कम समझती हूँ ?

इसके बाद थोड़ा रुककर कहने लगी—आप यहाँ से अभी चले जाइए, आपके पैरों पड़ती हूँ, और अब मत आग मे भूनिए हमें—

—मैं चला जाऊँ ?

हाँ, आप तुरन्त चले जाइए, एक रात नही खाने से आप मर तो नही जायेंगे, स्टेशन पर जाकर रात की ही ट्रेन से चले जाइए। इनके पिता आये थे, उन्हें भी मैंने इस घर से ऐसे ही भगा दिया था।—क्यो, मैंने शादी की है तो क्या कोई महापाप किया है ?

मैंने कहा—पाप की बात तो मैंने नही कही। आप क्यो इस तरह की बातें कर रही हैं ?

वे जैसे रोने लगीं। भरे हुए गले से बोली—गलती की मैंने ? पाप की बात उभारकर अपराध किया है मैंने ? अपराध यदि कर ही दिया तो कर दिया—उसके लिए किसी को जवाबदेही के लिए मैं मजबूर नही हूँ। लेकिन आप अब यहाँ से जाइए। मैं उनके जान-पहचान के लोगों का चेहरा तक नहीं देखना चाहती। अब मैं नही चाहती कि मेरी ससुराल

का कोई भी आदमी यहाँ आए। ससुर-सास मर गये—तब आप लोग क्यों बेकार में मुझे भाड़ में झोंकने के लिए चले आते हैं ?

मैंने कहा—अटल'दा के माता-पिता तो अटल'दा के शोक के कारण ही मरे।

उन्होंने कहा—अच्छा ही हुआ, बला टली।

यकायक भीतर से अटल'दा की आवाज़ सुनाई पड़ी—अरी ओ, कहाँ हो, हाथ-पैर धोने को पानी दे दिया।

मैंने कहा—यह देखिए, शायद उन्हें सुनाई पड़ गया है—

—वह मैं सब समझा दूंगी। लेकिन आप तो यहाँ से रास्ता नापिये।

ऐसा कहकर प्रायः मुझे ठेलकर ही उन्होंने दरवाजे के बाहर निकाल दिया।

मैं कहता ही रह गया कि अटल'दा जरूर नाराज़ होंगे। लेकिन वे बोलीं—उनकी बात आप लोगों को अधिक नहीं सोचनी होगी। मैं हूँ उसके लिए—आप जाइए। यह कहकर उन्होंने मेरी आँखों के सामने ही दरवाज़ा बन्द कर दिया। घाटशिला के उस अंधेरे में, कुछ क्षणों तक मैं अवाक्-सा खड़ा रहा। इसके बाद उस रात को कब ट्रेन आयी, कब ट्रेन छूटी, कब मैं ट्रेन में बैठकर कलकत्ते पहुँच गया—कुछ भी याद नहीं। याद रहा तो बस यह कि जिस अटल'दा को इतनी श्रद्धा करता था, प्यार करता था, वह अटल'दा कहीं खो गया।

क्यों अटल'दा को हमने खोया ?

याद पड़ता है, कलकत्ते आकर कई बार सोचा कि सारी बातें लोगों को बता दूं। लेकिन कहूँगा किससे ? जिसे चाहता था, प्यार करता था वही अब नहीं रहा, वही चल बसा।

सुना था कि विवाह की रात के बाद से ही अटल'दा की नयी बहू ने कोई सम्पर्क नहीं रखा अटल'दा के साथ। अटल'दा के धनी श्वसुर ने भी दामाद को छोड़ दिया। इसके बाद जिन्दगी की जद्दो-जहद में कौन कहाँ खो गया, यह जानने की हममें से किसी को फुर्सत नहीं थी।

ऐसा तो अक्सर होता ही रहता है। कितने ही घनिष्ट मित्र एक दिन हठात् पता नहीं कहाँ खो जाते हैं, फिर उनसे जीवन में कहीं भेंट नहीं हो पाती। कितने ही अपरिचित अपने हो उठते हैं—अजनबी, जिगरी दोस्त बना-बैठते हैं। इसलिए अटल'दा की बात उनके माता-पिता की बात, उनकी शादी-शुदा बीवी की बात—फिर नहीं याद आयी। बादामतल्ला छोड़कर कितने मुहल्लों और कैसे वातावरण से कहाँ से कैसे नये मुहल्ले में

बचूंगा, यह भी तो पहले से पता नहीं था। लेकिन आज, इतने दिन बाद, वहीं ठिकाना देखकर अवाक् हो उठा था।

भुवनबाबू ने कहा—आपको अगर पसन्द है तो मुझे कोई एतराज नहीं है।

मेरे ही ऊपर जब भार था, तब इंदुलेखा देवी को एक बार और चपरासी के हाथ चिट्ठी भेजकर बुलवा भेजा। लिख दिया—कुछ जरूरी पूछताछ करने के लिए एक बार मिलना विशेष रूप से आवश्यक है।

सचमुच ही मेरी इच्छा हुई थी, सब कुछ जानने की—जिनके पास अथाह सम्पत्ति थी, उन्हीं की इस इकलौती बहू को यकायक नौकरी की जरूरत क्यों पड़ी? उस समय तो सुना था कि उनके पिता के पास बेशुमार दौलत थी। लोहे का कारोबार था। पिता के मर जाने पर क्या वह सारा रुपया बर्बाद हो गया? सिर्फ इतना ही सुना था कि पति को छोड़ने के बाद अटल'दा की पत्नी पढ़ने-लिखने में व्यस्त है। मैट्रिक पास थी ही, इसके बाद किसी कालेज में दाखिला ले लिया था। पर यह तो नहीं जानता था कि उसने बी० ए० भी पास कर लिया है।

उस दिन शाम को ही श्यामबाजार गया।

पुराने दोस्त अधीर बोस से मुलाक़ात हो गयी।

मैंने पूछा—हमारे अटल'दा की कोई खबर सुनी?

अधीर है बड़ा ही जीवट का आदमी। चारों ओर के समाचार रखता है। तन्दुरुस्ती है और फुर्सत भी है उसके पास।

उसने कहा—अटल'दा की कौन-सी खबर?

मैंने उत्तर दिया—अटल'दा की दूसरी पत्नी मेरे मुहल्ले के स्कूल में नौकरी के लिए आयी थी—क्यों, जरा बताओ तो?

अधीर को जरा भी अचम्भा नहीं हुआ।

उसने कहा—उनकी हालत तो अच्छी थी—इतना बड़ा लोहे का कारोबार, इतनी बड़ी इमारत—पिता के मर जाने के बाद सब कुछ खत्म हो गया शायद?

—सब कुछ अटल'दा ने ही तो खत्म किया। अधीर बोला।

अरे, यह क्या? मैं तो जैसे आसमान से गिर पड़ा। पता नहीं कहाँ अटल'दा का एक दुर्निवार आकर्षण था। मुखड़े में या उनकी आँखों में, कौन जानता है।

अधीर की बातों से और आश्चर्यचकित रह गया।

मैंने कहा—इसके वाद ?

मैं तो कुछ भी नहीं जानता था—

अधीर ने वताया—घाटशिला के स्कूल में एक वार अपनी एक पाठ्य-पुस्तक रखवाने के सिलसिले में गया था। वहीं से यह खवर मिली थी।

अधीर की किताबों की दुकान है। कई तरह की किताबें छापकर वहुत से स्कूलों में लगाने की कोशिश करता रहता है। इसी कारण उसे वहुत से ज़िलों और गाँवों में घूमना पड़ता है। पहली वार जाकर नहीं समझ सका था कि अटल'दा घाटशिला के इसी स्कूल में हैं। लेकिन वात-चीत के दौरान यह पता लग ही गया। इसके वाद जितनी वार भी वह वहाँ गया है, कुछ न कुछ खवर जुटाकर लाया है। अटल'दा जो हम सभी के लिए आदर्श युवक थे उनकी खवर पाने के लिए किसे कौतूहल न होता ! इसके अतिरिक्त उसने जो खवरें जुटाई थीं वे थीं भी सचमुच गोपनीय। इतने दिनों के वाद उसी कहानी को लेकर मैंने यह उपन्यास लिखा है—यह जानकर सचमुच ही वहुत-से लोग मुझसे नाराज़ होंगे। लेकिन अव नाराज़ होने की कोई वात नहीं। अव तो उस नाटक के अंतिम अंक के अन्तिम दृश्य का अन्तिम पर्दा भी गिर चुका है—तव ही तो यह सव लिख पा रहा हूँ।

पर खैर !

हम लोगों की ही तरह शायद इंदुलेखा देवी ने भी अटल'दा का पता लगाया था। शायद वहुत जगहों से पता लगाया था। लेकिन कहीं भी कोई खोज-खवर न पाकर वह निराश हो गयी थीं। आखिर हम लोगों की ही तरह उन्हें भी पता लग ही गया। और इंदुलेखा देवी एक दिन घाटशिला जा पहुँची।

भीतर से जैसे किसी ने पूछा—कौन ?

इंदुलेखा ने कहा—मैं।

—मैं कौन ? नाम नहीं है ?

यह कहते-कहते जो वाहर निकली उसे इंदुलेखा देवी ने पहचान लिया। कुन्ती देवी ! लेकिन उसके साथ वातचीत करने से पहले ही वह सीधे अटल'दा के सोने वाले कमरे में घुस गयी।

अटल'दा तव एक शाल लपेटकर शायद कुछ पढ़ रहे थे। मुंह घुमाकर देखने के वाद वोले—तुम ?

इंदुलेखा ने कहा—हाँ, मैं।

और कुछ वातचीत की ज़रूरत किसी को न थी। फिर भी अटल'दा ने कहा—यकायक कैसे आयीं ?

इंदुलेखा ने कहा—मेरे पिता छः माह पहले चल बसे।

अटल'दा बोले—उम्र तो हो ही चली थी, इसीसे चल बसे। अच्छा, मुझे बताओ मैं क्या कर सकता हूँ?

इंदुलेखा ने कहा—तुम भला क्या करोगे? तुम्हारे साथ मेरा क्या लगाव?

अटल'दा ने कहा—तो क्या केवल यह खबर देने के लिए ही तुम इतनी दूर चली आयी?

इंदुलेखा बोली—पागल न होने पर भी कोई इतनी दूर केवल यह खबर देने नहीं आता।

तो मुँह खोलकर साफ-साफ कहो न, कैसे आना हुआ?—अटल'दा ने कहा।

इंदुलेखा बोली—जरूर कहूँगी। नहीं कहने पर तुम जीत जो जाओगे। तुमने समझा है कि मुझे हराकर तुम दुनिया की वाहवाही लूट लोगे?

अटल'दा ने कहा—मेरी वाहवाही की बात अभी रहने दो—

इंदुलेखा ने कहा—तब छोटी थी, इसी से नहीं समझ पायी। अब बड़ी हुई हूँ, लेकिन अब तुम्हारा स्वार्थ पहचान लिया है।

—क्या पहचाना है?

सारा घर जैसे स्तब्ध हो गया। घर के ताक, बिछौने, पलंग—सभी कुछ जैसे सजीव हो उठे थे। बाहर की ओर से एक फुरहरी चिड़िया घर में आ गयी थी। वह भी फुर्र से उड़ गयी, इस असह्य वातावरण को देखकर।

इंदुलेखा ने कहा—तुम्हारे साथ तो मेरी दौलत के लेन-देन का रिश्ता है—और क्या सम्बन्ध है मेरा-आपका, बोलो?

अटल'दा ने कहा—इतने दिन बाद तुमने यह समझा?

—तब तुम बेहया की तरह इसे मंजूर करते हो?

अटल'दा ने कहा—तुमसे विवाह करने के लिए मेरा जाना ही बेहयाई थी—यह बात किसी को नहीं पता है? पर आज उसे कबूल करने पर क्या वह बेहयाई कुछ कम हो जायेगी?

इंदुलेखा ने कहा—लेकिन इस हालत में दिन गुजारकर, वही बेहयाई तो तुम छिपाना चाह रहे हो। क्या मैं इतना भी नहीं समझती?

अटल'दा ने कहा—मैं चाहे जिस हालत में भी रहूँ, तुमसे भीख माँगने तो नहीं गया—

इंदुलेखा बोली—भीख माँगने जैसी ही तुम्हारी हालत है यह तो मैं भी देख रही हूँ, लेकिन तुमने भीख क्यों नहीं माँगी, यह भी मैं जानती हूँ।

अटल'दा ने कहा—क्या जानती हो, बताओ तो ?

इंदुलेखा बोली—वही बताने तो आयी हूँ यहाँ और इतने दिन क्यों नहीं आयी, वह भी बताऊँगी। जिस सम्पत्ति के लिए तुमने मुझसे विवाह किया था, उसे नहीं लेकर तुम जीत जाओगे, यही समझते हो न ?

—इसका मतलब ?

इंदुलेखा ने कहा—बड़ा अहंकार है न तुम्हें इस बात का ?

अटल'दा ने कहा—जो कहना चाहती हो, साफ़-साफ़ कहो न !

साफ़-साफ़ कह रही हूँ, बहुत से खत मैंने तुम्हें दिये लेकिन तुमने एक भी जवाब नहीं दिया। सोचा होगा कि तुम कष्ट भोगकर बिना खाए-पहने, तिल-तिल करके मरोगे और मैं तुम्हारे शोक में रोऊँगी ?

अटल'दा ने कहा—तुम्हारा एक भी खत मुझे मिला है, ऐसा तो मुझे याद नहीं पड़ता—खैर, उसे जाने दो पर क्या लिखा था तुमने खत में ?

—सुनिए।

यकायक पीछे से एक ज़नानी आवाज़ आते ही इंदुलेखा ने पीछे घूम कर देखा कि कुन्तीदेवी दरवाज़े की चौखट पर खड़ी थीं।

—क्या ? इंदुलेखा बोली।

कुन्तीदेवी ने कहा—देखतीं नहीं कि आदमी एक साल से बीमार है। ऊपर से यह सब कह रही हो ?

इंदुलेखा ने कहा—क्यों ? अगर एक साल से बीमार हैं तो डॉक्टर क्यों नहीं बुलाया गया ? और अगर अच्छा डाक्टर बुलाने को रुपया-पैसा नहीं था तो मुझसे क्यों नहीं माँगा ?

इसके बाद अटल'दा की ओर ताककर कहने लगी—दौलत ही के लिए तुम्हारे बाप ने मेरे साथ तुम्हारी शादी की थी और आज उसी रुपये को माँगने में इतनी लज्जा ?

चुप रहो।

यकायक जैसे बम फट पड़ा हो घर के भीतर। अटल'दा के गले में इतनी आवाज होगी, इतना ज़ोर होगा—इसका अन्दाज़ इससे पहले किसी को नहीं था।

लेकिन इतनी सरलता से अगर इंदुलेखा हार मान ले तो वह इंदुलेखा भला कैसे रहेगी ?

वह भी स्वर को सप्तम पर चढ़ाकर बोली—तुम चुप रहने को किसे कह रहे हो ?

अटल'दा ने कहा—तुम्हें।

इंदुलेखा ने कहा—चुप रहने के लिए तो मैं यहाँ नहीं आयी हूँ।

आज चुप रहने की बारी मेरी नहीं है. आज तो मैं अपना दावा जताने आयी हूँ—और वह दावा मैं जोरदार आवाज में चिल्ला-चिल्लाकर जताऊँगी।

अटल'दा ने कहा—तो क्या है तुम्हारा दावा, कहो ? बताकर चली जाओ यहाँ से—

इंदुलेखा ने कहा—सिर्फ दावा जताने ही नहीं, उसका बदला भी मैं चाहूँगी—

अटल'दा ने कहा—तो बोलो, क्या दावा है तुम्हारा ? बोलो।

इंदुलेखा ने कहा—तुम दोनों मिलकर ऐसे ही मेरी जिन्दगी बर्बाद कर दोगे ? क्या मैं तुम्हारी कोई नहीं हूँ ? क्या तुमने अग्नि देवता को साक्षी बनाकर मुझे नहीं ब्याहा ?

अटल'दा ने कहा—मैं कह चुका हूँ कि वह मेरी बेहयाई…

—वह अगर तुम्हारी बेहयाई थी तो इससे मुझे क्या ? तुम्हारी बेहयाई, लज्जा, धर्म का फल मैं क्यों भोगूँ ? इसका जवाब दो मुझे !

थोड़ी देर तक अटल'दा इस बात का जवाब नहीं दे पाये।

इसके बाद उन्होंने कहा—कौन सा मुआवजा पाकर तुम मेरा पिण्ड छोड़ोगी, मुझे मुक्ति दोगी ? बोलो, मैं वही दूँगा।

इंदुलेखा गरज उठी—निर्लज्ज ! भगोड़े ! कायर कहीं के ! किस मुँह से तुम पिण्ड छुड़ाने की बात कहते हो ? अगर तुम्हारा पिण्ड छूट जाये तो यह दुनिया झूठी है। भगवान् झूठा है। चाँद-सूरज झूठे हैं। सब यह सारी पृथ्वी झूठी है।

अटल'दा ने जरा-सा रुककर कहा—तुम चाहती क्या हो अब ? जो तुम चाहती हो वही कहो। मैं बीमार हूँ।

इंदुलेखा ने कहा—मैं चाहती हूँ तुम्हें चंगा करना।

सुनकर कुन्तीदेवी अवाक् हो गयी।

चंगा करना !!!

बाज अगर झपट्टा मारता तो भी कुन्ती को इतना आश्चर्य न होता। इतनी तेज-तर्रार कुन्ती भी जैसे पत्थर हो गयी। उसके मुँह से फिर कोई बात नहीं फूटी।

इंदुलेखा कहने लगी—हो सकता है, तुम पूछो कि क्यों मैं तुम्हें चंगा करना चाहती हूँ। मेरा सर्वनाश जिसने किया, उसे भला-चंगा करने से मेरा लाभ ? लेकिन लाभ है, इसी में तो मैं तुम्हें भला-चंगा करना चाहती हूँ। तुम्हें भला-चंगा अगर कर नहीं सकी तो मेरी मुक्ति नहीं होगी।

यकायक अटल'दा जैसे कुछ बोल नहीं पाया।

फिर उसने कहा—इसका मतलब ?

इंदुलेखा ने कहा—इसका मतलब अगर तुम समझ सकते तो मेरा भाग्य ही क्यों फूटता ? इसका मतलब समझना तुम्हारे लिए ज़रूरी नहीं है—

यकायक अटल'दा की ओर नज़र पड़ते ही इंदुलेखा ने देखा कि वह जैसे उत्तेजना के कारण झूम रहे हैं। अब तक बैठे ही थे अटल'दा। इस बार जैसे लुढ़क रहे हों। इसके बाद काँपते-काँपते बिछौने पर वह गिर पड़े। साथ ही एक गड़गड़ाहट की आवाज़ के साथ उनके मुँह से खून गिरने लगा।

इंदुलेखा झट पीछे घूमकर बोली—खड़ी-खड़ी क्या देख रही हैं ? डाक्टर बुलवाइए न—

कुन्ती ने कहा—यह कोई नयी बात नहीं है।

—नयी नहीं है तो भी चुपचाप खड़े रहने से तो यह आदमी मर जायेगा। कुछ दीजिए, पीक-दान वगैरह—

कुन्ती तब भी वहीं खड़ी रही। बोली—आपके यहाँ रहने पर मैं इनको नहीं बचा पाऊँगी—आप चली जाइए।

इंदुलेखा बोली—चली जाने के लिए तो मैं नहीं आयी हूँ।

—लेकिन अगर आप इनका भला चाहती हैं तो आपको यहाँ से चला ही जाना होगा।

इंदुलेखा ने कहा—इस हालत में इन्हें फेंककर तो मैं नहीं जा सकती—आपके हज़ार कहने पर भी नहीं—

तब क्या अपनी आँखों के सामने इनकी मृत्यु देखना चाहती हैं ?

इंदुलेखा ने कहा—मैं क्या चाहती हूँ इसके बारे में आपको चिन्ता नहीं करनी होगी। इनका अच्छा-बुरा मेरा भी तो अच्छा-बुरा है। इससे तो बेहतर है कि मैं खुद ही देखूँ कि मैं क्या कर सकती हूँ।

इतना कहकर इन्दुलेखा अटल'दा के सिर को अपनी गोद में लेकर बैठ गई। अपनी साड़ी से अटल'दा का मुँह पोंछकर सिर के ऊपर पंखा झलने लगी। वह एक अद्भुत रूप था इन्दुलेखा देवी का।

कुन्ती देवी उस मुखड़े की ओर अपलक ताकती रह गयी।

और उसके दूसरे दिन से ही उस रोगी, उस सौतिन और उस परिवार का सारा भार इन्दुलेखा देवी ने अपने ऊपर ले लिया।

मैंने कहा—इसके बाद ?

इसके बाद अधीर बोला—हमारे अटल'दा, उसी हीरो अटल'दा ने

दूसरी बहू का रुपया-पैसा उड़ाना शुरू कर दिया। दवा, डाक्टर और मकान-भाड़ा इन सब का प्रबन्ध इन्दुलेखा देवी ही कर रही थीं।

—इसके बाद ?

अधीर ने कहा—इसके बाद आज 'पुरी' तो कल 'वाल्टेयर' यही सब चलता था। बाप के मर जाने के बाद लोहे का कारोबार समाप्त हो गया था। बैंक में जो रुपया था उसी को खर्च किया जा रहा था। अन्त में हमारे यही अटल'दा ऐसे हो जायेंगे—ऐसी तो मैं कल्पना भी नहीं कर सकता था। बहू के रुपये से शायद अटल'दा का खर्च चलता था।

मैंने मन ही मन सोचा शायद यही होगा। अधीर सोच की बात ही सच होगी। रुपये-पैसे चुक गये हैं—अब नौकरी की जरूरत भी इन्दुलेखा देवी को पड़ी है तो अटल'दा के ही लिए।

अधीर ने पूछा—तो क्या उन्हें नौकरी दे दी तुमने ?

मैंने कहा—देखो, क्या जवाब आता है, कल बुलाया है उन्हें। पूछूँगा कि नौकरी की क्या जरूरत है उन्हें ?

सोचा था, मेरी चिट्ठी पाते ही दूसरे दिन आ जायेंगी इन्दुलेखा देवी।

भुवनबाबू को कह रखा था मैंने—यह महिला मेरी परिचिता हैं। नौकरी इन्हें ही दें।

भुवनबाबू भी राजी हो गए थे। लेकिन जिस वक्त आने की बात थी, उस समय वे नहीं आयीं। दस बजे, ग्यारह बजे, बारह भी बज गये। घड़ी की ओर ताककर देखा, न जाने कब डेढ़ भी बज गया। आदमी के जरिये उन्हें खबर तो ठीक समय पर भिजवायी थी, लेकिन जब दो भी बज गये, तब भी खबर नहीं आयी।

पर जब तीन बजे, तब इन्दुलेखा देवी आयीं।

चेहरा जैसे उखड़ा-उखड़ा, उतरा-सा। देखकर लगा जैसे उन्होंने रत-जगा किया हो। उनकी ओर ताककर अवाक् हो उठा।

मैंने पूछा—तबीयत तो ठीक है आपकी ?

उन्होंने कहा—नहीं।

मैंने कहा—आपको ही इस पोस्ट के लिए हमलोगों ने सिलेक्ट किया है। आप उचित समय पर एप्वाइण्टमेण्ट पा जायेंगी।

सुनकर उनके नेत्रों में कृतज्ञता का भाव झलक उठा। मुझे नमस्कार करके वे चली गयीं।

जाते समय कहती गयीं—आपने मेरा कितना उपकार किया है उसे मैं जबान से शायद नहीं कह सकती। कृतज्ञता को समझ कैसे प्रगट करूँ!

सिर्फ सिलेक्शन का ही भार था मेरे ऊपर, और किसी चीज़ का नहीं। स्कूल के साथ निजी तौर पर मेरा कोई लगाव नहीं था। मैं अपने काम को लेकर ही मशगूल था। स्कूल की कमेटी का भी मैं कोई नहीं था।

स्कूल के स्थायी सेक्रेटरी भुवनबाबू छुट्टी से वापस आकर एक दिन मेरे पास आए।

मैंने पूछा—कैसी लगीं आपको इन्दुलेखा जी! टीचर-सिलेक्शन कैसा रहा, कहिए तो?

भुवनबाबू बोले—अत्यन्त सुन्दर। इतनी अच्छी टीचर हमारे स्कूल में दूसरी कोई नहीं है।

—वह कैसे!

—यह महिला अद्‌भुत 'पंक्चुअल' हैं। एक भी दिन छुट्टी नहीं ली है उन्होंने। भुवनबाबू बोले।

मैंने कहा—लेकिन एक रिस्क लिया था मैंने—

—कैसा रिस्क?

मैंने कहा—इन श्रीमती जी के पति ने इनको त्याग दिया है—यही डर था जरा मुझे—

भुवनबाबू ने पूछा—किसका डर?

मैंने कहा—आपके स्कूल की लड़कियों के चरित्र पर कुछ रिफ़्लेक्शन पड़ सकता है।

भुवनबाबू ने कहा—नहीं भाई, बल्कि ठीक उसका उल्टा। ऐसे आदर्श चरित्र की महिला-टीचर तो पहले कभी देखी नहीं।

मैं थोड़ा अचम्भे में आ गया। स्कूल में इतनी महिला-टीचर्स के रहते हुए भी इन्दुलेखा जी को ही क्यों इतना आदर्श माना गया, यह मैं नहीं समझ पाया।

मैंने कहा—किस वजह से आप उन्हें आदर्श मानते हैं, ज़रा कहें तो।

भुवनबाबू ने कहा—बिल्कुल सीधा-सादा पहनावा, चायपान या और किसी भी चीज का कोई नशा नहीं, छात्राओं को कक्षा में खूब मेहनत से पढ़ाती हैं। हमारी हेड-मिस्ट्रेस भी बहुत खुश है उन से। इसके अलावा छात्राएँ उन्हें भक्ति-भाव से देखती हैं, प्यार करती हैं—

मैंने कहा—तो मेरा निर्वाचन ठीक ही हुआ, चलो अच्छा रहा, मुझे तो इसीसे डर था।

और सचमुच ही कुछ दिनों के भीतर ही इन्दुलेखा देवी का नाम चारों ओर फैल गया। सभी छात्राएं इन्दुलेखा देवी के पास पढ़ना चाहतीं। अपने घर भी इन्दुलेखाजी कई छात्राओं को पढ़ाने लग गयीं।

सुबह घर पर छात्राओं को पढ़ानीं। रात को भी पढ़ानी। दोपहर को स्कूल। भुवनबाबू ने उनकी तनख्वाह भी बढ़ा दी।

पर एक दिन रास्ते में भेंट हो गयी। स्कूल जा रही थीं। हल्का-सा घूँघट किये हुए बिना किसी ओर ताके, नीचे मुँह किये वे रास्ते पर सीधी चली जा रही थीं। एक बार सोचा कि बुलाकर बात करूँ, लेकिन फिर सोचा यह उचित नहीं है। रास्ते में खड़े होकर एक अल्प-परिचित महिला के साथ बात करना शायद अभद्रता है। मैंने देखा कि शरीर पर एक साधारण सी साड़ी थी, साधारण चप्पल, साधारण-सा ही ब्लाऊज। सिर पर एक छोटी-सी छतरी।

एक बार जी में आया कि पूछूँ—अटल'दा का क्या हालचाल है? कैसे हैं वे?

लेकिन शायद इन्दुलेखा जी मेरे इस प्रसंग को उन्मुक्त भाव से न ले पायें, यही सोचकर मैं उनकी बगल से आगे बढ़ गया।

बाद में भुवनबाबू से ही सब सुना।

उन्होंने कहा—सुना है आपने कुछ?

मैंने कहा—किसके बारे में? इन्दुलेखा जी के बारे में? नहीं तो, मैंने तो कुछ भी नहीं सुना।

भुवनबाबू बोले—देवी हैं भाई, देवी! इन्दुलेखाजी मनुष्य नहीं, देवी हैं—

सारी बातें बता गये भुवनबाबू। कैसे दुर्भाग्य में उन्होंने जीवन-यापन किया है, पति के द्वारा कैसी अवहेलना, प्रतारणा पायी है उन्होंने। सारी कहानी कह सुनायी। इसके बाद उसी रोगी पति के लिए किस तरह अपनी अर्जित-पैतृक सम्पत्ति फूंक दी है। जिस पति ने उन्हें विवाह के दिन से छोड़ दिया, उसी के लिए उन्होंने अपनी विलास-वासना, सम्पत्ति, यौवन, स्वास्थ्य सब कुछ जैसे विसर्जित कर दिया है। उसी को उन्होंने कितनी बार कितनी स्वास्थ्यकर जगहों पर भिजवाया है, कितने बड़े-बड़े डाक्टरों को दिखाया है, कितनी कीमती क़ीमती दवाएँ खरीद कर उन्हें खिलायी हैं।

अन्त में भुवनबाबू ने कहा—सचमुच, आजकल के समाज में ऐसी पति-भक्ति नहीं दीख पड़ती, भाई। यह तो जैसे साक्षात् देवी की बातें हैं।

मैंने कहा—मैं सब जानता हूँ।

—आप जानते हैं?

भुवनवाबू यह सुनकरअवाक् हो गये। वे बोले—आप सब कुछ जानते हैं?

मैंने कहा—जानता था, इसी से तो उन्हें इस पोस्ट के लिए सिलेक्ट किया था।

भुवनवाबू ने कहा—आज पन्द्रह वर्षों से इसी प्रकारअपने को बचाती आ रही हैं वे, यह क्या छोटी बात है? भला कौन औरत आजकल के ज़माने में ऐसा कर सकती है?

मैंने कहा—वह तो है ही—

भुवनवाबू बोले—मैं सोच रहा हूं कि ऐसी पतिव्रता का सम्मान होना उचित है, आपकी क्या राय है?

मैंने कहा—आप लोग यदि ऐसा समझते हैं तो मेरी असहमति नहीं है।

भुवनवाबू बोले—लेकिन इन्दुलेखाजी जो आपत्ति कर रही हैं। वे कह रही हैं कि इस बारे में उनकी राय नहीं है। वे कहती हैं कि मैंने अपने रोगी पति के लिए स्वार्थ-त्याग किया है, इसमें भला सम्मान-सभा की क्या बात है?

इसके बाद थोड़ा रुककर बोले—लेकिन यदि आप ज़रा राज़ी करा सकें तो···

मैंने कहा—मेरे साथ उनके पति का परिचय है, यह मैं जताना नहीं चाहता।

—तब एक काम कीजिए।

ऐसा कहकर भुवनवाबू ने एक नया प्रस्ताव दिया।

वे बोले—हम लोग अगर पब्लिक से कुछ चन्दा इकट्ठा कर उनके रोगी पति की सहायता कर सकें तो इससे मेरा मन प्रसन्न हो उठे।

मैंने कहा—यह तो अच्छी बात है। इसमें मुझे कोई आपत्ति नहीं। कुछ ही दिनों के भीतर भुवनवाबू के प्रयत्न से क़रीब एक हज़ार रुपये इकट्ठे हो गये। कम या ज्यादा, सभी ने कुछ न कुछ दिया। मैंने भी पाँच रुपये दिये। भुवनवाबू ने एक सौ रुपया चन्दा दिया। मैं इससे बहुत प्रसन्न हुआ। बचपन के अपने अटल'दा के प्रति और भी कुछ कर सकने पर हमारा ख़ुश होना स्वाभाविक ही था।

यह अनुष्ठान गोपनभाव से ही हुआ। इन्दुलेखाजी इसको लेकर ढोल-ढमाका नहीं पीटना चाहती थीं।

उन्होंने हाथ फैलाकर धन्यवाद देते हुए भुवनवाबू से रुपये ले लिये और बोलीं—प्रार्थना कीजिए कि मेरे पति शीघ्र ही स्वस्थ हों।

इसके बाद अचानक एक दिन खबर मिली कि अटल'दा कलकत्ते आये हैं। अधीर बोस ने ही खबर दी थी। पेण्ड्रा रोड के सैनिटोरियम में थे, वहाँ से इन्दुलेखाजी कलकत्ते लायी हैं उन्हें।

मैंने कहा—तब तो अटल'दा निश्चय ही ठीक हो गये होंगे?

अधीर बोस ने कहा—नहीं, ठीक होने पर उन्हें कलकत्ते क्यों लाया जाता?

मैंने कहा—तुम उनका पता-ठिकाना जानते हो?

अधीर बोस ने अटल'दा का पता दिया। उनके पास से पता-ठिकाना लेकर मैं बहूबाज़ार के एक घर में गया।

कलकत्ते में इतने मकानों के रहते हुए भी अटल'दा ने क्यों इस मुहल्ले में इस घुप्प अंधेरे घर को किराये पर लिया, कौन बता सकता है? हवादार रोशनी वाला धूप आने लायक कोई कमरा नहीं मिला?

घुप्प अंधेरे, सीलन-भरे कमरे में अटल'दा को देखकर उस बार की ही तरह आश्चर्यचकित रह गया। जिन्होंने दरवाज़ा खोला, उन्हें देखते ही समझ गया कि उस दिन वाली भाभीजी हैं। कुन्ती देवी। उनका चेहरा और भी बदल गया था।

मैंने कहा—हो सकता है आप मुझे पहचान पा रही हों?

भाभीजी ने कहा—नहीं।

मैंने कहा—बहुत दिन हुए मैं घाटशिला गया था अटल'दा को देखने—मैं अटल'दा के साथ एक ही स्कूल में पढ़ता था।

—आप क्यों आये हैं यहाँ?

मैंने कहा—सुना था कि अटल'दा यहाँ आये हैं—इसीलिए एक बार मिलने—

—लेकिन क्या देखेंगे उनका?

मैंने कहा—क्यों, उनके साथ मिलना-जुलना क्या मना है?

—नहीं, मना नहीं है। लेकिन उनसे मिलने-जुलने पर शायद ही वे बहुत दिन जिन्दा रह सकें।

मैं यह बात सुनकर पहले तो चौंक उठा। फिर बात की तह तक पहुँचने में जैसे मुझे थोड़ी देर लगी।

मैंने कहा—इसका मतलब?

भाभीजी बोलीं—इसका मतलब यह कि उनका जल्द से जल्द मर जाना ही बेहतर है।

—क्यों?

भाभीजी बोलीं—मर जाने पर ही उन्हें शान्ति मिलेगी। अब तो मैं

भी यही चाहती हूँ।

मैंने कहा—आप यह क्या कह रही हैं, मैं समझ नहीं पा रहा।

भाभीजी बोलीं—मैं दिन-रात भगवान् से यही मनौती करती हूँ कि ये जल्दी से जल्दी मर जायें, इनकी तकलीफ़ अब आँखों को बरदाश्त नहीं होती।

—आप क्या कह रही हैं भाभीजी ?

भाभीजी ने कहा—हाँ, मैं ठीक ही कहती हूँ। मृत्यु ही उनके लिए मंगल होगी, मेरे लिए भी—

—लेकिन मैं तो आपकी बातें कुछ भी नहीं समझ पा रहा हूँ। मैंने सुना था कि बहुत दिनों से उनकी चिकित्सा हो रही है, बहुत रुपये दवा-दारू में खर्च हो रहे हैं और सुना था कि कोई उनके लिए अपनी सारी जायदाद बेचकर उनकी चिकित्सा का खर्च चला रहा है। सुबह से शाम तक खुद भी परिश्रम करता है अटल'दा की ज़िन्दगी बचाने के लिए।

भाभीजी ने कहा—ग़लत सुना है आपने।

मैंने कहा—नहीं, भाभीजी, ग़लत नहीं, मेरे ही मुहल्ले के एक स्कूल में वे नौकरी करती हैं। हम सभी मुहल्ले-टोले वालों ने मिलकर उनके पति की दवा-दारू के लिए एक हज़ार रुपये चन्दा इकट्ठा करके भी उन्हें दे दिया है।

—आप लोगों ने ग़लती की, भूल की है आप लोगों ने। इतनी बड़ी धूर्त, मक्कार, इतनी क्रूर-हृदया, ऐसी नीच प्रकृति की स्त्री मैंने अब तक नहीं देखी। उसे सामने पाने पर मैं उसका खून कर देती।

—आप गुस्से में किसे यह सब कहे जा रही हैं ?

भाभीजी ने कहा—आप जानते नहीं, इसीसे ऐसा कह रहे हैं। जानते होते तो चन्दा वसूल करके आदर सहित उसके हाथ पर एक हज़ार रुपया रखते ? क्या आप जानते हैं वह कितनी बेहया और रज़ील औरत हैं ? कितनी नीच स्त्री है ?

भाभीजी क्रोध के मारे फट जाना चाहती थीं।

मैंने कहा—लेकिन हम लोग तो उन्हें अच्छी स्त्री के ही रूप में जानते हैं। अपने पति के लिए उन्होंने अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया है।

—आप लोग कुछ भी नहीं जानते, इसीसे ऐसा समझते हैं। जानने पर उसे झाड़ू मारकर स्कूल से निकाल बाहर कर देते।

—क्यों ?

—तो सुनिए जो स्त्री इतनी नीच है कि पति के लिए उसके मन में ज़रा भी मोह-माया नहीं, जिसके बारे में बाहर के व्यक्ति समझते हैं कि पति के

लिए अपना सर्वस्व तिलांजलि दे रखा है इन लोगों ने, लेकिन इतनी कठोर-हृदया, ऐसी संगदिल औरत हिन्दुस्तान में पैदा नहीं हुई। मैं उनकी ओर ताक-ताककर अवाक् हो उठती हूँ। वह आदमी शायद बच जाता, लेकिन उस मुँह-झौंसी के हाथ में जिस दिन से पड़ा, उसी दिन से उसके बचने की कोई आशा नहीं रही।

—यह क्यों ? मैंने कहा।

—हाँ, लोग जैसे चूहे को अधमरा करके पिंजड़ा खटखटा मजा देखते हैं, वैसे ही यह दवा-दारू, रुपये-पैसे सभी कुछ देती रही है—जरूरत पड़ने पर 'कन्वालेसेंट-होम' करने के लिए भी भेजा है इन्होंने। वाल्टेयर भेजा था छः महीने के लिए। पुरी में एक कोठा था लेकर। इस बार बेलूड़ रोड के सैनिटोरियम में एक कोठा था तीन मास—

—उनके लिए आप खर्च तो वे ही दे रही हैं न ? मैंने कहा।

—वह तो दे ही रही है, आप तक कितने लाख रुपया खर्च किया है—उसका कोई हिसाब नहीं। हजारों-हजार रुपये खर्च करके मुझे और उन्हें भिजवाया है सभी जगहों पर। यहाँ कलकत्ते में जितने भी डाक्टर हैं, सभी को घर बुलाकर—मोटी फीस देकर दवा करवाती है उनकी। यहाँ जितनी भी दवा मिल सकती है—सभी खिलाती हैं जबर्दस्ती उन्हें, कभी भी दवा-दारू में कोई गड़बड़ी नहीं होने दी उसने…

—तब ? तब आप कैसे कह रही हैं यह सब, झूठ-मूठ दोष दे रही हैं उन्हें ?

—दोष नहीं दूँगी तो क्या कहूँगी ? तब रोग दूर क्यों नहीं हो जाता ? इतनी दवा के बावजूद भी क्यों नहीं उनका रोग दूर होता ?

—क्या सब कुछ मनुष्य के हाथ में है ?

—नहीं, इसलिए नहीं, बल्कि रोग ठीक हो जाने से मेरा भाग्य सुखी होगा इसलिए—

—लेकिन चन्द्रलेखा देवी भी तो आपके पति को चंगा ही करना चाह रही हैं ?

मालती इस बार नीचे स्वर में बोली—यही बातें सभी को कहती घूम रही है। लेकिन उसका असली उद्देश्य क्या है, जानते हैं आप ?

—आप ही बताइए, असली उद्देश्य तो पति को बचाना, भला-चंगा करना ही है और क्या ?

मालती भी बोली—नहीं, असली मतलब कुछ और ही है।

मैंने कहा—तो क्या वे अपने पति की मृत्यु चाहती हैं ?

—नहीं, वह भी नहीं।

—तब ?

भाभीजी बोलीं—उनका असली मक़सद है कि आदमी को मौत और ज़िन्दगी के बीच लटकाकर रखना—अध-मरा करके जीवित रखना। सारी ज़िन्दगी, ताउम्र वे ऐसे ही लुंज-पुंज बेकाम रहें, यही चाहती है इन्दुलेखा।

—क्या ? आश्चर्य से मेरा मुँह खुला रह गया। हाँ, नहीं तो जहाँ तनिक भी दवा का असर हुआ और वह चंगे होने लगे दवा-दारू बन्द कर देती हैं वह क्यों, उस बार वाल्टेयर में उनका स्वास्थ्य बहुत सुधर गया था। ज्यों ही उसे खबर मिली, त्यों ही उसने कहा—अब वाल्टेयर में और नहीं रुकना है चले आओ। वहाँ कुछ दिन और रहने से बिलकुल चंगे हो जाते, लेकिन वह तो उसे सहन नहीं होता। एक बार एक दवा बहुत फ़ायदेमन्द साबित हो रही थी—ज्यों ही उसे पता लगा कि सचमुच ही यह आदमी इससे बच जायेगा, रुपया भेजना ही बन्द कर दिया उसने। दवा बहुत क़ीमती थी।

इसके बाद थोड़ी देर तक रुककर फिर उन्होंने कहना शुरू किया—इस बार पेण्ड्रा रोड के सैनिटोरियम में तीन वर्ष रखा, वज़न बढ़ गया था काफी, खुलकर भूख भी लगने लगी थी। उसे ज्यों ही पता लगा, त्यों ही लिख दिया, यहाँ चले आओ, और रुपये नहीं भेज सकती।

मैं सारी बातें सुनकर आश्चर्यचकित हो उठा था। मेरे मुँह से कोई भी बात नहीं फूट सकी।

बहुत देर के बाद मैंने कहा—तब उनका असली उद्देश्य क्या है ?

—उद्देश्य और कुछ नहीं, मज़ा लेना, जैसे चूहे को लोग अधमरा करके तमाशा देखते हैं। छोड़ते भी नहीं और तुरन्त मार भी नहीं देते। एक अद्भुत-निष्ठुर आनन्द है यह। इन्दुलेखा को अगर मैं जान से मार सकती तो मेरी साध मिटती।

इसके बाद भला मैं क्या कहता ?

आने के पहले मैंने पूछा—तो अब अटल'दा कैसे हैं ?

थोड़ी देर रुकने के बाद भाभीजी ने उत्तर दिया—इतनी बातें सुनने के बाद भी आप यह पूछ रहे हैं ?

जो भी हो, उस दिन अटल'दा सो रहे थे। दूर से देखकर ही उस दिन लौट आया। बातचीत का कोई मौका नहीं मिल पाया मुझे।

लेकिन उस दिन मुझे एक अजीब जानकारी हुई। एक आश्चर्यजनक रहस्य का उद्घाटन हुआ। अद्भुत और आश्चर्यजनक। ऐसा तो कोई भी उपन्यास या कहानी नहीं पढ़ी। ऐसा भी हो सकता है, मैं तो कल्पना भी

नही कर सकता। मन-ही-मन कई दिन अशान्त रहा। ऐसा कैसे हुआ? और कैसे लोग किसी का सर्वनाश करने पर तुल जाते हैं? इससे इन्दुलेखा को शान्ति मिली है? मैंने भी मोटे-मोटे कई उपन्यास लिखे हैं। मैं भी समझता था कि मैं मनुष्य-चरित्र का राई-रत्ती सब कुछ जानता हूँ। इसके [illegible] मे जाने जाते हैं।

लेकिन उनकी पुस्तको मे भी तो ऐसा कोई चरित्र नहीं हैं। तब क्या कुन्तीदेवी ने झूठ बोला है मुझसे? सब कुछ क्रोध में कह गयी? अपनी सौत इन्दुलेखा के प्रति अपने मन की कड़वाहट उगल गयी? पता नही। बहुत कुछ सोचने के बाद भी मैं किसी नतीजे पर नही पहुँच सका।

उस दिन एकाएक अधीर बोस मेरे घर पर आ पहुँचे।

यूँ अधीर बोस को किसीके घर जाने का वक्त नही मिल पाता। मेरे नये मकान का पता भी उसे नहीं मालूम था। रविवार था, छुट्टी का दिन था, बस इसीसे वह निकल पड़ा था।

आते ही बोला—आ ही गया भाई—

मैंने कहा—उनकी बाबत कुछ पता चला?

—किसकी बाबत?

मैंने कहा—अरे उन्ही भटल'दा के बारे मे।

अधीर बोस ने कहा—मैं भी तो उन्ही के बारे मे कहने आया हूँ—उसने इसके बाद जो कुछ बताया उसे सुनकर तो मैं और भी हतप्रभ हो उठा।

मनुष्य के जीवन में कितनी विचित्र घटनाएँ घटती हैं, आदमी का मन किस-किस कोठे पर चढ़ता-उतरता रहता है, इसका हिसाब तो शायद विधाता भी नहीं जानते। इस पृथ्वी पर जितने भी मनुष्य हैं, उतने ही चरित्र भी हैं। मुझ जैसा उपन्यास लेखक कैसे सबके मन को जाने, सबके मन की रखवाली करे। अगर ऐसा ही होता तो उपन्यास लिखना कभी का खत्म हो गया होता। अगर किसी फार्मूले के द्वारा आदमी के मन को परख लिया जाता तो आदमी आज आदमी न होकर मशीन बन गया होता।

यह बहुत दिन की बात है। इस उपन्यास के बिल्कुल आरम्भ की घटना है।

अटल'दा उस समय हमारे मुहल्ले के चमकते हीरे थे। पढ़ाई-लिखाई में फ़र्स्ट, आदर्श, चरित्रवान युवक के रूप में प्रख्यात। हर मुहल्ले में उस समय चरित्र-गठन पर उत्सव और आयोजन चलते रहते। छोटे लड़कों के मन पर स्वामी विवेकानन्द का प्रभाव था। इस समय जैसे राजकपूर, दिलीपकुमार, नर्गिस नाम सबकी ज़बान पर रहता है वैसे ही उस समय स्वामी विवेकानन्द का नाम सबकी ज़बान पर था। उनकी 'ब्रह्मचर्य' शीर्षक पुस्तक लड़कों को चरित्र-गठन के लिए पढ़ने को दी जाती थी। बंकिमचन्द्र की पुस्तक 'आनन्दमठ' लड़कों के एक क्लब से दूसरे क्लब तक जा पहुँचती थी। यह उसी अग्नि-युग के आखिर समय की बात है। मुहल्ले-मुहल्ले टेगार्ट साहब घूमता रहता। टेगार्ट साहब उस समय कलकत्ते का पुलिस कमीशनर। टेगार्ट साहब के पैरों में पम्प शू, देह पर अद्धी का कुर्ता, देशी धागों से बुनी हुई धोती। कहाँ, किसने ब्रिटिश सरकार के खिलाफ़ बातें की हैं, अंग्रेज के विरुद्ध लोगों को कौन भड़का रहा है, कौन लोग कहाँ लाठी चलाना और छुरा मारना सीख रहे हैं, यह सब घूमकर देखना ही टेगार्ट साहब का काम था। तब अचानक एक दिन पुलिस आकर छापा मारती थी मुहल्ले पर और चुने-चुने कई लोगों को पकड़ ले जाती।

आज जो लोग लड़ते हैं, उन्हें यह जानना जरूरी है कि भारतवर्ष की यह आज़ादी अपने आप कहीं से टपक नहीं पड़ी। करोड़ों लोगों की कुरबानी, कोशिशों का नतीजा है यह आज़ाद भारत। करोड़ों लोगों के आत्म-त्याग का फल है यह।

आज हम जो चाहें खुशी से करते हैं। जहाँ चाहते हैं, जाते हैं। उस वक्त लार्ड साहब के आस-पास घूमने से गिरफ्तारी हो जाती थी। चौरंगी में मस्ती से घूमा नहीं जा सकता था आजकल की तरह। टॉमियों की छड़ी सट से माथे पर आ पड़ती। उसका कोई उपाय भी नहीं था। नालिश करने पर भी कोई सुनवाई नहीं थी। आम आदमी के लिए अराजकता का राज्य था।

ट्रेन के जिस डिब्बे में अंग्रेज़ बैठते, वहाँ किसी भारतीय को चढ़ने नहीं दिया जाता था।

थर्ड क्लास के कम्पार्टमेण्ट में भी जहाँ दो-चार एंग्लो-इण्डियन रहते वहाँ किसी भारतीय को नहीं घुसने दिया जाता। इस दहशत-भरे माहौल में हम रहा करते थे। उन्नीस सौ पच्चीस-छब्बीस ईस्वी में। तब कांग्रेस का रुख भी बहुत नरम था। रो-धोकर कुछ क्षमता अर्जित करने की चेष्टा में थी कांग्रेस। प्रतिवर्ष एक बड़ी-सी मीटिंग होती थी, बस। कुछ रिज़ॉल्यूशन पास होते और लम्बे-लम्बे भाषण। जो कुछ असल काम होता थ

—हाँ, वह तो मैंने भी सुना है।

—तो इस वक्त बाहर आना-जाना—नहीं ही बाहर निकले मान लो तो क्या हुआ ? चारों तरफ़ ही तो भेदिये घूम रहे हैं।

सिर्फ आशुबाबू ही नहीं और लोग भी उसे ख़बरदार रहने को कहते। अटल'दा की भलाई के लिए वे उपदेश दिया करते।

लोग कहते—अपने पिता की भी बात सोचो, बेटा। तुम्हारे ही ऊपर तो इस बुढ़ौती का भरोसा है।

हम लोग भी यह बात जानते थे। लेकिन तब हम छोटे थे। तब हम लोग बूढ़ों की बातों पर कान नहीं देते थे। हम लोगों ने सीखा था कि स्वदेश के लिए प्राण देना सर्वश्रेष्ठ गौरव है। हम लोग जानते थे कि ब्रिटिश सरकार के सत्यानाश के बिना भारतवर्ष का कल्याण नहीं हो सकता। हम लोग देखते थे हज़ारों-लाखों युवक डिग्रियाँ लेकर बेकार बैठे हुए हैं। वे कहीं भी नौकरी नहीं पाते। हम लोग तब चितरंजन दास का भाषण सुनते थे। पार्कों में जा-जाकर लेक्चर सुना करते थे। मीटिंग के समय पुलिस वाले लाठी लेकर मुस्तैद रहते—कभी-कभी हठात् लाठी-चार्ज भी करते थे वे। बहुत से लोगों के सिर फट जाते, आँखें चली जातीं। लेकिन पुलिस जितना ही अत्याचार करती, हम लोग उतने ही प्रबल ब्रिटिश-विरोधी होते जाते। हम लोग चाहते थे अंग्रेज़ों को भगाना—हम लोग चाहते थे कि हम अंग्रेज़ों की दासता से मुक्त हों। तब चरखा कातने का युग नहीं रह गया था। चरखा कातने का युग जा चुका था। उन्नीस सौ बीस-इक्कीस ईस्वी में। चरखा कातने से स्वराज्य मिला भी नहीं है। इस बार अंग्रेज़ों को मार भगाना होगा। गोली से, बॉम्ब से। उनके पेट पर लात मारकर भी; साथ ही विलायती चीज़ों का बायकाट करके भी। हम लोग लुक-छिपकर स्वामी विवेकानन्द का उपदेश पढ़ा करते। आज की तरह तब सिनेमा नहीं था। थियेटर थे ज़रूर, पर श्याम बाजार की ओर। हमारे मुहल्ले से बहुत दूर। वहाँ जाने की कोई सुविधा नहीं थी। इतना रुपया ख़र्च करके थियेटर देखने की हस्ती नहीं थी हमारी। सबसे बड़ी बात कि इस ओर सम्मान ही नहीं था।

ठीक इसी समय अटल'दा को बाहर से बुलावा आ गया। हमारे मुहल्ले के बाहर छोटे मुहल्ले से शुरू हुआ था उनका काम। धीरे-धीरे दूसरी जगहों से बुलावा आने लगा। वहाँ भी क्लब बनाया उन्होंने। स्वामी विवेकानन्द की वाणी सारे देश में फैलानी होगी। तभी इस देश में स्वराज्य आयेगा, तभी अंग्रेज़ों को यहाँ से भगाया जा सकता है।

हम नहीं जानते थे कि अटल'दा कहाँ, क्या करते हैं ? कहाँ, किस

मुहल्ले मे फिर उन्होंने क्लब बनाया है ? लेकिन भीतर-ही-भीतर बहुत-सी शाखाएँ बन चली थी। सभी स्थानों पर अटल'दा जाते, उनका जाना जरूरी भी था। अटल'दा की निगरानी के बगैर कोई भी क्लब नही चल पाता था।

ऐसे ही एक क्लब मे जाकर भूल हो गयी। भूल तो वैसे कुछ भी नही लेकिन पहले-पहल वैसा ही लगता था।

स्वामी विवेकानन्द ने ही तो कहा था—'जो खुद दोजख तक जाकर जिन्दगी की तलाश मे भटकता है— जो नरक पर्यन्त जाकर भी जीवन के लिए कातर भाव मे अन्वेषण करता है, जीव-उद्धार की चेष्टा करता है, वही रामकृष्ण परमहंस का पुत्र है, जो इस महासन्धिपूजा के समय कमर बाँधकर ग्राम-ग्राम, घर-घर मे 'उसका' सन्देश बाँटता है, वही मेरा भाई है। यही परीक्षा है—रामकृष्ण का बेटा अपना प्राण देकर भी परोपकार करेगा। अटल'दा इसी तरह के युवक थे।

खुद परीक्षा मे फ़र्स्ट आने से क्या होगा अगर और सब फिसड्डी ही रह गये ? अपनी ही मुक्ति लेकर क्या होगा अगर और सारे लोग अन्ध- [illegible]

मृण्मयी प्रतिमा मे फिर से प्राण-प्रतिष्ठा होगी।

यही सब बातें अटल'दा सारे क्लब मे कहा करते।

लडके-लड़कियाँ मुँह फाड़कर अटल'दा की बातें सुनते। देवता की तरह सब अटल'दा की भक्ति करते थे। क्लब में लडके-लडकियाँ सभी आते थे। किन्तु छोटी लड़कियाँ अधिक आती थी। फ्राक पहनने वाली छोटी बच्चियाँ, क्योंकि जरा बडी होते ही उनके 'गार्जियन' उन्हें रोक देते। तब उनके शादी-विवाह की बारी आ जाती।

लेकिन अटल'दा पर अविश्वास करना पाप था, अटल'दा के चरित्र में कोई भी पाप रंच-मात्र नही।

एक दिन कुन्ती ने कहा—पिताजी ने एक दिन बुलाया है आपको अटल'दा—

—क्यों ?

—आपको देखना चाहते हैं।

अटल'दा ठठाकर हँस पड़े।

अटल'दा कहते—वाह रे वाह, मुझमे देखने को भला क्या है ?

कुन्ती कहती—मैंने आपके बारे में पिताजी को बताया था न—

कुन्ती ने अपने पिता से क्या कहा था, कौन जानता है लेकिन एक दिन कुन्ती अटल'दा को पकड़कर अपने घर ले ही गयी। भवानीपुर में ऐसा भी मुहल्ला होगा, अटल'दा कल्पना ही नहीं कर सके थे।

अटल'दा को देखकर वे सज्जन विस्तर से उठ बैठे।

कुन्ती ने कहा—पिताजी को ज्वर है—

—ज्वर है, तो क्यों उठ रहे हैं ? आप लेटे रहिये न।

वे सज्जन हँसने लगे। फिर बोले—ज्वर मेरा आज का नहीं है। यह तो सात सालों से हैं। तभी से भोग रहा हूँ।

—क्यों डॉक्टर्स क्या कहते हैं ?

—डॉक्टरों की सामर्थ्य के वाहर है मेरा यह रोग—यह मेरे मन का रोग है।

वड़ी सहजता-सरलता से वे सज्जन सारी बातें कहते गये। उनका नाम था मंगल सरकार।

बोले—कुन्ती से आपके बारे में वहुत कुछ सुनता था लेकिन सोच-सोचकर रह जाता था। अव और कुछ करने की क्षमता मेरी नहीं रही। बस सोये-सोये स्वप्न देखता रहता हूँ। वेटा, एक दिन तुम्हारी ही तरह मेरे पास भी क्षमता थी। तभी तो कुन्ती से कहा था कि तू अपने अटल'दा को एक दिन यहाँ ले आ।

इसके बाद थोड़ी देर रुककर फिर बोले—तुम्हें देखकर मुझे आशा हो रही है, वेटा, तुम कर सकोगे...

अटलविहारी वसु। अटल'दा। आशुवावू के लड़के को कभी इतनी वड़ी उम्र के बूढ़े ने उत्साह नहीं दिया था।

अटल ने कहा—आपकी तरह पहले किसी ने भी मुझे उत्साहित नहीं किया। सभी ने प्राय: निन्दा की है। सभी ने कहा कि नौकरी करने से अच्छा रहता है—माता पिता का उपकार होता। आप ही पहले आदमी हैं—जिसने मेरे काम का समर्थन किया है—

—समर्थन क्या वेटा, अगर मेरी उम्र पहले जैसी रहती तो मैं भी तुम्हारे ही साथ काम करने निकल पड़ता। जीवन तो वस एक ही है। तुम्हारी उम्र में मुझे भी किसी ने उत्साहित नहीं किया था वेटा, इससे मेरा नुकसान हुआ था। मैं इसीसे हार गया था। मैं नहीं कर सका था कुछ पर तुम जीतोगे, तुम जीतोगे! तुम कर सकोगे!! मैं आशीर्वाद देता हूँ—

कुन्ती के घर जाने का सूत्रपात ऐसे ही हुआ था। चारों ओर से काम से घिरे रहने के बावजूद भी पता नहीं क्यों वहाँ एक आकर्षण महसूस करते थे अटल'दा। अटलविहारी वसु—केलकटा यूनिवर्सिटी का फ़र्स्ट क्लास फर्स्ट ब्वाय!

मंगलबाबू ने कह रखा था—जब भी तुम्हें समय मिले—सोच मत करना। फौरन आ जाना इधर।

अटल'दा भी समय मिलते ही उनके पास जा बैठता। अपने मन की आशा-आकांक्षा अकपट भाव से कहता। मंगलबाबू से उसका तनिक भी दुराव नहीं था। मंगलबाबू को भी जैसे इतने दिनों बाद एक साथी मिल गया था।

मंगलबाबू की खुद की जिन्दगी भी अजीब थी।

वे कहते—बरिशाल में लार्ड साहब की ट्रेन पर बम्ब फेंका गया था, यह तो जानते हो। बहुत से आदमी उस बम्ब केस में पकड़े गये। लेकिन पुलिस असली आदमी को आज तक नहीं ढूँढ सकी। असली आदमी जिसने बम्ब फेंका—जिसने बम्ब बनाया उसका पता पुलिस आज तक नहीं पा सकी—आज भी उसके नाम गिरफ्तारी का वारण्ट और उसकी हुलिया लटक रही है—

—कौन? असली आदमी कौन था?

मंगलबाबू सरकार नहीं है···मेरा असली नाम कुन्ती भी नहीं जानती। अवाक् होकर सुन रहा था अटल'दा।

—तब आपका असली नाम?

—व्रजेन।

अटल'दा के सामने जैसे बाज झपट्टा मार उठा—वह कीलित-सा हो गया।

—आप ही व्रजेन हैं?

—हाँ।

आपके ही नाम पर पुलिस ने दस हजार रुपये के इनाम की घोषणा की थी?

—हाँ, आज तक व्रजेन को कोई नहीं पकड़ पाया। कोई जानता भी नहीं कि व्रजेन किस हालत में कहाँ है, मर गया है कि जिन्दा है? सब जानते हैं कि व्रजेन इण्डिया से बाहर भाग गया है, जर्मनी या रूस या अमेरिका अथवा टोकियो। रासविहारी वसु की तरह। बस तुम्हीं को आज पहले-पहल पता लगा है।

अटल आश्चर्यचकित होकर मंगलबाबू की ओर ताकता रह गया।

—आशा करता हूँ कि तुम भी मुझे पहले की ही तरह मंगलबाबू के रूप में ही जानोगे। एक मध्यमवर्गीय बीमार क्लर्क के रूप में।···यही समझना कि मैं नौकरी छोड़कर ज़िन्दगी काट रहा हूँ। हो सकता है, यहाँ से बाहर भाग जाने पर ही शायद अच्छा हुआ होता। मेरा स्वास्थ्य भी सुधरता।—

—लेकिन आप बाहर गये क्यों नहीं? वही अच्छा होता।

मंगलबाबू बोले—बाहर जाने पर अच्छा होता, यह तो मैं भी जानता था। लेकिन मेरे ऊपर एक दूसरा बड़ा काम आ पड़ा।

—कौन-सा काम?

मंगलबाबू ने कहा—वही, जो यह लड़की घर में है न, कुन्ती। उसी के कारण मुझे यहाँ ठहरना पड़ा।

—आपकी लड़की के कारण?

मंगलबाबू गम्भीर होकर धीमे स्वर में बोले—सभी लोग उसे मेरी ही लड़की समझते हैं। कुन्ती भी यही समझती है कि मैं उसका पिता हूँ।

—तो क्या आप उसके पिता नहीं हैं?

—नहीं।

बीसवीं सदी का प्रथम सिर उठ रहा था। बंगाल में विप्लववाद धीरे-धीरे लोगों को जगा रहा था। एक दिन आयरलैण्ड में भी ऐसा ही हुआ था। पृथ्वी पर जहाँ भी जनता के ऊपर अत्याचार हुआ है, वहीं सन्त्रासवाद (टेररिज्म) जन्मा है—इस सन्त्रासवादी आन्दोलन की ध्वजा जिन्होंने सबसे पहले फहरायी वे सदा से मध्यमवर्ग के लोग ही थे। मध्यमवर्ग के लोग ही सदैव अपना दुख-कष्ट-शिकवा-शिकायत लेकर आगे बढ़े हैं। समाज का सबसे अधिक भावप्रवण अंश यही मध्यमवर्गीय समाज है। मंगलबाबू भी उसी मध्यमवर्गीय समाज के आदमी थे। उन्होंने उस युग की यन्त्रणा को उस ज़माने के दर्द को जैसा समझा, बूझा और भोगा था वैसा अटल'दा के इस काम के लोगों ने अनुभव नहीं किया। अटल'दा को वे यही बातें समझाते।

सन् १९०२ का युद्ध अभी खत्म ही हुआ था कि एक दूसरे युद्ध की भूमिका जापान और रूस के बीच शुरू हो गयी। ठीक उसी समय 'गुप्त समिति' की प्रतिष्ठा की चेष्टा हुई। उसके पीछे जिस महिला की एक विशिष्ट भूमिका थी, वे थीं सिस्टर निवेदिता।

अटल'दा ने सर्वप्रथम एक क्रान्तिकारी के मुँह से उन दिनों की यह कहानी सुनी थी। अब तक किताबों में भी पढ़ा था, पर इस बार प्रत्यक्ष

प्रमाण पाया।

— आप लोगों को कभी भी डर नहीं लगा?

—कैसा डर? किसका भय? क्यों डरते हम? भय भी तो मृत्यु है। मेरा मित्र था सत्येन। सत्येन का नाम सुना है?

—सुना है। अटल'दा ने कहा।

—यही सत्येन था खुदीराम बोस का गुरु। हम दोनों ही मेदिनीपुरी के मियाँ बाजार अखाड़े में कुश्ती लड़ते थे। एक ही साथ हम दोनों ने अग्नि-दीक्षा ली थी। मेरा और उसका पथ एक ही था। वह अब [illegible] हुआ तब मैं भाग आया। प्राण-भय से नहीं। बल्कि इसलिए कि जो [illegible] सत्येन नहीं कर पाया उसे मैं पूरा करूँगा। लेकिन मुझे हराकर [illegible] जीत गया। वह इतिहास तो सभी जानते हैं। तुम भी जरूर [illegible]

—हाँ, जानता हूँ।

सारे काम निपटाकर रोज अटल'दा कुन्ती के घर आते। [illegible] क्रान्तिकारियों की कहानी सुनते-सुनते कभी-कभी बहुत [illegible] कुन्ती के घर ही खा लेते। कुन्ती ने तब क्लब जाना छोड़ [illegible] चलाने की ट्रेनिंग अब उसे शोभा नहीं देती। फ्राक छोड़कर [illegible] पहनने लगी थी। मगलबाबू को कोई आपत्ति नहीं थी [illegible] में, लेकिन समाज को आपत्ति थी। उन दिनों इतनी [illegible] भी नहीं निकलती थी—क्लब में जाना तो बहुत [illegible]

कहानी सुनते-सुनते अटल'दा कहते— [illegible]

मगलबाबू कहते—आज बहुत रात हो गयी है [illegible]

तभी से वे लड़की खोजने लगे। आखिरकार बहुत खोजने के बाद य
रिश्ता मिला। यही अलीपुर की इन्दुलेखा देवी। एक दिन वे लोग गुप
चुप इन्दुलेखा देवी को देख भी आये।

दोस्तों ने कहा—यहीं विवाह कीजिए। इतना बड़ा आदमी समधी के
रूप में मिलेगा, आपके लड़के को एक भरोसा रहेगा। इतना बड़ा आदमी
और उसकी एकमात्र लड़की—यह क्या कम बात है?

अटल'दा तब जैसे एक दूसरी दुनिया में रह रहे थे। इसका कुछ ठीक
नहीं कि कब भोजन करना है, कब सोना है। परिवार तो सभी लोग
बसाते हैं। जंगली जानवर भी पेट के लिए कुछ न कुछ उपाय करता ही
है। तो क्या इतना लिख-पढ़कर अटल'दा को भी यही करना पड़ेगा? तब
अटल'दा और दूसरे लोगों में फ़र्क ही क्या रहा?

मंगलबाबू वही सुनाते जाते थे—मेदिनीपुर के मियाँ बाज़ार के एक
पुराने घर में हमारी गुप्त समिति थी। भीतर काली की मूर्ति थी। नौकर-
चाकर कोई नहीं था। हम लोग खुद ही भोजन बनाते। सामने के घर में
एक करघा लगाया था हमने। उस करघे में हमेशा आधा तैयार एक कपड़ा
लगा रहता। उसी करघा-घर में हम सब एक-एक करके इकट्ठा होते। मैं
रहता, खुदीराम रहता, शचीन रहता, निरापद राय रहता। हम तब
आदमी नहीं थे, आग के दहकते शोले थे।

उस समय की बातें आजकल के छोकरे नहीं जानते। टेगार्ट साहब को
देखकर सभी भय से काँप उठते। जब पुलिस को देखकर लोग घरों में छिप
जाते थे तब हमारी चिन्तनधारा कुछ दूसरी ही थी। सत्येन के बड़े भाई
के पास एक दुनाली बन्दूक थी। उसी बन्दूक को लेकर शहर के बाहर वे
हमें बन्दूक चलाना सिखाया करता।

कई दिनों से सत्येन को शुबहा हो रहा था। शायद कोई उसका पीछा
कर रहा था।

एक दिन सत्येन ने मुझसे कहा—मुझे अगर पुलिस पकड़ ले तो तुझे
क काम करना होगा, ब्रजेन।

—क्या काम है, बोल?

सत्येन ने कहा—इस संसार में किसी के प्रति भी मेरा दायित्व नहीं
। मेरे मर जाने पर किसी का कोई नुकसान नहीं होगा। सिर्फ एक
क्ति के अलावा।

मैंने पूछा—कौन है वह? तुम्हारे बड़े भाई? ज्ञाननाथ बाबू?

सत्येन ने कहा—नहीं, भाई साहब को मैं बड़ी श्रद्धा की दृष्टि से
ा हूँ। भाई साहब भी मुझे बहुत प्यार करते···लेकिन भाई साहब

नहीं।

—तब कौन है ? किसकी बात कह रहे हो ?

सत्येन ने कहा—वह मेरी अपनी सगी नहीं है; तूने भी तो कभी नहीं जानना चाहा उसके सम्बन्ध में,—लेकिन उसका अपना कोई नहीं। मैं ही उनका भरण-पोषण करता हूँ। मैं जब पकड़ लिया जाऊँगा तब क्या होगा उनका, यही सोच रहा हूँ सिर्फ—

सत्येन ने कहा—तब तुझे वायदा करना पड़ेगा कि किसी को भी यह बात नहीं बताओगे। वे कौन है और मेरे कौन होते हैं वे ? यह भी नहीं बताओगे।

मैंने कहा—प्रतिज्ञा की मैंने कि नहीं कहूँगा।

सत्येन ने फिर कहा—जेल से लौट आने पर मैं ही उनका भार ले लूँगा। तब तुझ पर भार नहीं डालूँगा, तब मैं बताऊँगा कि वे कौन हैं। तब बताऊँगा कि क्यों तुझे उनका भार लेने को कहा था—

वे कौन हैं, सत्येन के साथ उनका क्या सम्पर्क है, यह भी नहीं पूछा मैंने। मैं जानता था कि सत्येन कितने ही अनाथ-असहाय लोगों की सहायता करता रहता है। जिस दिन मेदिनीपुर आकर सत्येन को पुलिस ने गिरफ्तार किया—सारे मेदिनीपुर शहर के लोग अवाक् रह गये। सत्येन को वे क्यों पकड़ ले गये और कोई भले ही न जानता हो, किन्तु मैं जानता हूँ। लेकिन जानकर भी मैं किसी को बता नहीं सकता। बताने की जरूरत भी नहीं है। मुझे भी शायद पकड सकते थे। घटना-चक्र के कारण ही मैं पुलिस की नजरों से बच गया और दूसरे ही दिन मेदिनीपुर छोडकर चला आया।

लेकिन जाने के ही दिन एक घटना घटी। मैं भोर वेला में ही घर से निकल पडा था। रात के आखिरी पहर में। लेकिन आकाश में चन्द्रमा दिखाई पड रहा था। तारे टिम-टिमा रहे थे। सभी की नजर बचाकर भाग जाऊँगा, ऐसा समझकर ही निकला था। आशा थी कि किसी भी प्रकार लोकल ट्रेन पकड़कर एक बार कलकत्ता आ पहुँचते ही मुझे कोई नहीं पकड़ सकेगा।

यकायक उसी अन्धकार में ही जैसे कोई सामने आकर खड़ा हो गया। वहाँ बाजार था। बाजार तब भी खुला नहीं था। उसी बाजार के मोड पर एक आदमी मेरे सामने आकर ठमक कर खडा हो गया। उसके साथ एक छोटी-सी लड़की थी। बिलकुल छोटी-सी। दो या तीन साल की होगी।

मैंने पूछा—कौन ?

मन-ही-मन थोड़ा डर भी था मुझे। तब भी बाहर से बिलकुल अक्खड़

कर, छाती तानकर खड़ा हो गया।

उस आदमी ने कहा— आपके साथ एक जरूरी बात थी।

—लेकिन आप हैं कौन !

उस आदमी ने कहा—नाम बताने पर आप पहचान नहीं पायेंगे। मैं सत्येन के पास से आ रहा हूँ।

—सत्येन !

मैं तो जैसे आकाश से गिर पड़ा। मैं अपनी प्रतिज्ञा की बात भूल गया था। एक बार शुबहा हुआ कि पुलिस का आदमी तो नहीं है ? मुझे इसी तरह से मामले में फँसाना चाहता है। सत्येन को पुलिस ने इतना यकायक पकड़ा था कि मैं उसका कार्य-कारण सम्बन्ध कुछ भी नहीं समझ पाया। उस समय पुलिसकी धड़-पकड़ इतनी गुप-चुप होती थी किएक घण्टा पहले तक कोई भी आभास नहीं हो पाता था। इसी बंगाल के बंगाली ही उन दिनों अंग्रेज पुलिस के गुप्तचर थे। स्वदेशी आन्दोलन में जैसे बंगाली युवक का साहस विश्व में अतुलनीय है, वैसे ही विश्व के इतिहास में बंगाली जासूसों की मक्कारी भी बेजोड़ है।

इसी से सत्येन का नाम सुनकर जैसे अचम्भे में आ गया था। वह आदमी इसे जैसे भाँप गया।

उसने कहा—सत्येन बाबू ने मुझे आपके ही बारे में बताया था - आपको एक छोटी-सी लड़की की जिम्मेदारी सौंपने की बात थी शायद—

—हाँ, सत्येन ने कहा था ?

— यही है वह लड़की।

मैंने लड़की की ओर ताका। अध-मैला फ्राक पहने हुए थी। हम लोगों की बात-चीत कुछ भी नहीं समझ पा रही थी। चुपचाप उस आदमी का ही हाथ पकड़े खड़ी थी। अगर अभी बाजार के लोग जग पड़ें तो हमें देख लेंगे, पहचान लेंगे। इसके बाद तो फिर सर्वनाश।

—अच्छा, तो मैं चलूं ?

हठात् जैसे मेरी तन्द्रा टूटी। मैं उस आश्चर्य से उबर आया। लौटकर देखा तो वह आदमी लड़की को छोड़कर चला जा रहा था। और लड़की भी वैसी ही। न वह रो रही थी न शोर मचा रही थी।

मैं पुकारने को हुआ—अरे ओ भले आदमी !

लेकिन आवाज़ गले में जैसे अटककर रह गई। मैं चुपचाप देखता रह गया कि वह आदमी धीरे-धीरे अंधेरे की आड़ में कहीं खो गया। मैंने घूम कर लड़की की ओर देखा—वह जैसे मेरी ओर ताकती हुई भली-भाँति मुझे परख रही थी।

लेकिन तब वह सब सोचने का वक्त नहीं था। ट्रेन आने का वक्त हो चला था। ट्रेन का टिकट लेना होगा उसमें भी कुछ वक्त लगेगा।

जल्दी से मैंने लड़की का हाथ पकड़ा और दनदनाता हुआ स्टेशन की ओर चल पड़ा। लड़की भी चुपचाप मेरे साथ चलने लगी।

इसके बाद कब टिकट कट गया, कब ट्रेन पर चढ़ा, कब कलकत्ते पहुँच गया—उसे साथ लेकर, इस सबका ख्याल ही नहीं रहा। सत्येन से मैंने प्रतिज्ञा की थी। अतः वह बात तो निभानी ही है। आजीवन उस प्रतिज्ञा का मूल्य देना ही होगा। कम से कम जब तक वह जेल से नहीं लौट आता, तब तक।

और उसी दिन से मैं मंगल हो गया ब्रजेन से। मैं भूल गया कि मेरा नाम ब्रजेन है। मैं खुद ही जैसे खुद के लिए अनजान-सा हो गया। उसी दिन से कुन्ती का पिता हो गया।

कहानी सुनते-सुनते बहुत रात हो आई। बाहर मूसलाधार बारिश हो रही थी। अटल'दा ने खिड़की की ओर ताका।

इसके बाद पूछा—लेकिन क्या कुन्ती यह सारी बातें जानती है?

मंगलबाबू बोले—नहीं, उसे बताने की बात तो सत्येन ने नहीं कही—मैंने तो सिर्फ उसके पालन-पोषण का वायदा किया था।

—और आपका असली नाम ब्रजेन है यह भी क्या कुन्ती नहीं जानती?

—नहीं, यह भी नहीं जानती वह। मेरे अलावा बस दूसरे आदमी तुम्हीं हो जानने वाले। जो दो-एक आदमी जानते थे, उनमें से किसीको फाँसी हो चुकी है तो किसी की मौत हो चुकी है। अब तुम्हीं इस भेद को जानने वाले हो।

अटल'दा गम्भीर हो उठे। जैसे उनकी बोलती बन्द हो गयी।

—इतनी बातें तुम्हें नहीं बताता। लेकिन बहुत दिनों से देख-देखकर तुम्हें पहचान गया हूँ। तुम्हारे भीतर मैंने अपने अहम् को पाया। तुम्हीं कर सकोगे अटल, तुम से ही होगा। और लड़कों को देखता हूँ तो निराश हो उठता हूँ। बचपन से ही हम लोगों ने अंग्रेजों को मार भगाने की साधना शुरू की थी। तब तुम्हारी तरह के ही कुछ लड़के थे—लेकिन आज उनकी संख्या बहुत कम है। तुम्हारे भीतर उसी पुराने दिन के अपने 'मैं' को देख रहा हूँ। इसी कारण तुम्हें सब-कुछ बताया है। अब मेरी जिन्दगी के इने-गिने दिन ही बाकी हैं।

मैं समझ रहा हूँ कि अब अधिक दिन जीवित नहीं रह पाऊँगा। चिर-काल तक भला कौन जीवित रहता है। लेकिन अपना सर्वस्व लुटाने पर भी मैं कुछ नहीं कर पाया। देखो न, जिस नाम से मैं बचपन से ही परि-

चित था—अपना वह नाम भी मैं अब व्यवहार में नहीं ला सकता। जो मुझे इस पृथ्वी पर लाये वे लोग भी अपना कोई मकसद नहीं हल कर सके। मैं हार गया, लेकिन सत्येन से किये गये वायदे को निभा पाया, यही मेरे लिए आनन्द की वात है।

— इसके अलावा कोई आपका असली परिचय नहीं जानता?

—नहीं, कोई नहीं। मंगलबाबू बोले।

तब इतने दिनों तक किस परिचय से आपका जीवन कटा?

—मैं कलकत्ता कार्पोरेशनका क्लर्क हूँ, यही था मेरा एक मात्र परिचय

—यहाँ नौकरी करते समय क्या किसी को पता नहीं लग पाया कि आप कौन हैं?

—नहीं, मैंने केवल देशवन्धु चित्तरंजनदास के संग वातचीत की थी। मेरे शरीर पर खद्दर का कुर्ता देखकर शायद उन्हें लगा था कि मैं देश-भक्त हूँ। इसके अलावा और कुछ नहीं—बस इसीसे मेरी नौकरी लग गयी।

—इसके वाद?

—इसके वाद फिर जो नौकरी पकड़ी तो मैं क्लर्क का क्लर्क ही रह गया। और कुछ मैंने होना भी नहीं चाहा, और कुछ हो भी नहीं पाया। और कुछ अगर होता भी तो वह वेईमानी होती। सत्येन ने जो भार मेरे ऊपर दिया था, उसे कैसे सँभाल पाता? तब उसे कौन देखता?

—क्यों?

—कुन्ती को यदि पता लग जाता कि वह मेरी लड़की नहीं है तो कुन्ती का नुक़सान होता और मेरी वादा-खिलाफ़ी होती। वह मेरी ही लड़की है लोग यही जानें—मैंने भी चाहा था। मेरी अपनी भलाई की तुलना में सत्येन से किये गये मेरे वायदे का मूल्य अधिक था। तुम लोगों ने सुना होगा कि हम लोगों ने कितनी तकलीफ़ में दिन गुज़ारे हैं। नहीं सुना हो तो सुन लो। 'वन्देमातरम्' शब्द का उच्चारण करना भी उस समय पाप था। उसी पाप के विरुद्ध हमें लड़ाई लड़नी होती थी—इसीलिए हम लोग इतने कठोर हो गये। हम लोग ब्रह्मचारी की तरह अपना जीवन काटते थे। सोचा करते थे कि अगर हम लोग कष्ट भोग रहे है तो हमारे उत्तराधिकारी सुख पायेंगे। वे लोग स्वाधीन बंगाल में साँस ले सकेंगे। सुख की तुलना में हम लोग अपने चरित्र-सुधार पर विशेष वल देते थे।

कभी-कभी कुन्ती के सम्बन्ध में मेरा मन उमड़-घुमड़ आता। कौन है यह कुन्ती? कौन है उसका पिता? कौन है उसकी माँ? जो सज्जन मेरे हाथ

में कुन्ती को सौंप गये, वे ही कौन हैं ? बहुत-सी बातें सोचा करता लेकिन सोच-सोचकर भी तो कुछ परिणाम नहीं निकल पाता था। मैं अच्छी तरह जानता था कि सत्येन कोई भी अन्यायपूर्ण कार्य नहीं करेगा। भगवान् में भले ही कोई पाप निकल आये लेकिन सत्येन किसी भी पाप से परे ही था। हो सकता है सत्येन अपने किसी वादे को निभाने के लिए ऐसा कर रहा हो, लेकिन सत्येन सबसे अधिक विश्वास मेरा ही किया करता था—इसीलिए उस लड़की को मेरे हाथों में सौंपकर हँसते-हँसते फांसी के फन्दे में झूल गया। मेरे साथ इस जिन्दगी में भले ही उससे भेंट नहीं हुई लेकिन वह जहाँ भी रहे, मुझे इसी बात का सुख है कि मैंने उसे दिया हुआ अपना वचन निभाया। यह भार मैं शायद सदैव निभाता रहता लेकिन उम्र का भी तो आखिर तकाज़ा है और मैं जानता हूँ, अब ज्यादा दिन जीवित नहीं रहूँगा। और वह तक़ाज़ा जैसे कभी-कभी मुझे सुनाई पड़ जाता है। लेकिन इस बात की चिन्ता है कि मेरे बाद कुन्ती का भार कौन उठायेगा।

अटल'दा ने हठात् कहा—अगर मैं यह भार अपने जिम्मे ले लूँ तो आपको आपत्ति होगी ?

—आपत्ति होगी, मुझे ?

— [illegible] उठे। वे बोले—मैं अपना [illegible] । जैसे बैठे-बिठाये ही स्वर्ग [illegible] तुम्हारा मैं कृतज्ञ रहूँगा।

उस समय अटल'दा सोच भी नहीं सके कि कितना दारुण भार उन्होंने अपने ऊपर ले लिया है और वह भी जीवन-भर के लिए।

एक दिन मंगलबाबू बीमार पड़े और उसी बीमारी के दौरान भवानीपुर के एक छोटे-से किराये के मकान के बरामदे में मंगलबाबू की आँखों के सामने ही अटल'दा और कुन्तीदेवी के जीवन की उथल-पुथल का चरम मुहूर्त घटा। वाग्दान, सम्प्रदान, विवाह सब कुछ समाप्त हो गया।

अटल'दा त्याग में, शक्ति में और ब्रह्मचर्य में विश्वास करते थे। उनके लिए माता-पिता से बढ़कर था स्वदेश। कुन्ती भी उस समय अटल'दा की मन्त्र-शिष्या थी। अटल'दा ही उसके लिए आदर्श पुरुष थे। उसके हाथों में अपने को सौंपकर कुन्ती ने स्वयं को धन्य समझा।

मंगलबाबू ने आशीर्वाद दिया—तुम दोनों सुखी रहो। तुम दोनों मिल कर देश का कल्याण करो, देश को मुक्त करो—मैं और कुछ नहीं चाहता।

छोटा-सा था यह अनुष्ठान। केवल तीन प्राणी ही इस उत्सव को जान सके—मंगलबाबू, अटल'दा और कुन्तीदेवी। पता नहीं कहाँ की एक अज्ञात-अख्यात लड़की अटल'दा के जीवन को साँप की कुण्डली की तरह कस

गयी। कुन्ती ने घूंघट सहित अपना मस्तक छुपाकर अटल'दा के चरणों में प्रणाम किया और दो जीवन एकाकार हो उठे।

मरने के पहले मंगलवाबू कह गये—मैंने तुमको जो कुछ बताया है, वह सिर्फ़ तुम्हारे और मेरे बीच गुप्त रहे। मैं चाहता हूँ कि उसे कोई भी न जान पाए।

—ऐसा ही होगा—अटल'दा ने वचन दिया।

लेकिन यदि यहीं आरम्भ और अन्त होता तो अटल'दा के जीवन को लेकर उपन्यास लिखने की ज़रूरत नहीं पड़ती।

अधीर बोस ने कहा—लोग विवाह करते हैं और खुल्लम-खुल्ला उसकी सूचना देते हैं। इसीलिए दस आदमियों को न्यौता देकर उन्हें साक्षी रखकर खिलाने-पिलाने का रिवाज चला आ रहा है। आज लगता है कि यह नियम अच्छा है जबकि पहले समझता था कि यह बेकार-खर्च है। लेकिन यह बात नहीं है।

सचमुच ही जबहम अटल'दा की बातों को वेद-वाक्य केही रूप में मान कर चल रहे थे, तब अटल'दा भीतर ही भीतर हमारी सारी आस्था खो रहे थे। हम लोग यह समझते थे कि अटल'दा को बहुत काम है। सब लोग उसे दूर से प्रणाम करते, श्रद्धा प्रकट करते, बिना किसी कारण उसे योग-भ्रष्ट नहीं होने देते।

शायद ऐसा ही चलता। ऐसा ही कुन्ती देवी और अटल'दा का जीवन ऐश्वर्य से मण्डित होता। लेकिन नियति को शायद यह मंजूर नहीं था। वह नहीं हो पाया।

क्यों नहीं हुआ ऐसा, इसकी व्याख्या करने की ज़िम्मेदारी मेरी नहीं है। आदमी की ज़िन्दगी भी क्या कोई हिसाब लगाकर मिलने की चीज़ है? दो और दो चार होते हैं गणित शास्त्र में। लेकिन गणित के नियमों से भी भला कभी ज़िन्दगी चलती है?

बारिशाल मेल-डकैती केस के ब्रजेन को छिपे हुए मंगलबाबू के रूप में कलकत्ते में अटल'दा कैसे जान पाये? अटल'दा ही क्याजानते थे कि मनुष्य के सर्वोच्च आदर्शों का अधिकारी होते हुए भी एक दिन वह बह जायेंगे? हम, तुम और दस लोग जैसे बचे रहतेहैं—वैसे ही अटल'दा भी तो अपनी ज़िन्दगी गुज़ार सकते थे, सरकारी नौकरी कर सकते थे। और लोगों की तरह आपस में मिल-जुलकर हमारी वाहवाही लूट सकते थे। उनके मरने के बाद शायद हम लोग चन्दा इकट्ठा करके स्मृति-स्तम्भ भी खड़ा कर देते।

अगर कुन्ती देवी से विवाह किया ही था, तो अटल'दा ने सब लोगों को बताया क्यों नहीं।

रोज-रोज घर में देर से लौटने पर एक दिन आशुबाबू ने लड़के से जिरह की—इतनी रात क्यों होती है तुम्हें?

अटल'दा सदैव सच ही बोलते, अतः कहा—मेरा काम रहता है।

—लेकिन घर में भी तो काम हो सकता है? मैं इस बूढ़ी उम्र में क्या ये सारे काम कर सकता हूँ?

इस बात का कोई जवाब नहीं दिया अटल'दा ने। इसके बाद आशुबाबू ने चुप रहना ठीक नहीं समझा। शादी का बन्दोबस्त कर दिया। उनकी भी उम्र ढल चली थी। अपने लड़के की शादी कर देना उनका फ़र्ज़ था।

उस दिन भी अटल'दा घर से बाहर निकल रहे थे कि आशुबाबू ने कहा—अभी बाहर मत जाना, तुम्हें जरा घर में ही रहना होगा।

—क्यों?

आशुबाबू ने सोचा कि सारी बातें लड़के से खोलकर कहना ठीक नहीं है, शायद आपत्ति करे। अतः बिना कुछ कहे ही वे [illegible] लगे। लेकिन अटल'दा को जैसे कुछ सन्देह हुआ। [illegible] लगा कि जैसे कोई उनके विरुद्ध षड्यन्त्र कर रहा है। [illegible] जा पहुँचे।

—माँ, आज घर में यह सब कैसी व्यवस्था [illegible] आज यहाँ?

—वे लोग तुझे देखने को आ रहे हैं? [illegible]

—मुझे देखने?

वह जैसे आसमान से गिर पड़े।

—देखने आ रहे हैं—मतलब? मैं क्या [illegible] मुझे देखने आयेंगे?

—हाँ, आज तुझे देखकर ही [illegible]।

अटल'दा के मस्तक पर जैसे [illegible] में घर नहीं आते, बस रात काटने के [illegible] साजिश हो गयी? कब रचा गया यह [illegible] नहीं हुई।

अटल'दा की [illegible]।

—मैं नहीं रहूँगा इस घर में। [illegible] जा रहा हूँ यहाँ से…

यह कहकर वह ज्यों ही दरवाज़े की ओर बढ़ा कि सामने ही कन्यापक्ष के लोग कार लेकर हाज़िर। कन्या के पिता, पुरोहित और सजे-धजे दो-चार अन्य शरीफ़ लोग। बिलकुल आमने-सामने।

आशुबाबू बाहर आये।

नमस्कार-प्रणाम-आदर-सत्कार हुआ और सब लोग बाहर के बरामदे में आकर बैठे।

मध्यमवर्गीय परिवार की मध्यमवर्गीय बैठक थी। इस बारे में किसी को कोई शिकायत नहीं। यह तो जानी-सुनी बात थी। सब कुछ जानकर ही यहाँ विवाह कर रहे हैं। लड़का मेधावी, सच्चरित्र और स्वस्थ है। खोज-खबर लेने पर पता चला कि लड़का तो जैसे हीरा है। एक दिन सफलता के उच्चतम शिखर पर पहुँचेगा। मुहल्ले, ग़ैर-मुहल्ले के सभी लोगों ने एक स्वर से कहा कि ऐसा लड़का तो लाखों में एक मिलता है। इसलिए लड़के के पिता की आर्थिक अवस्था देखकर कन्या के पिता को अफ़सोस करने की बात ही नहीं उठती। आशुबाबू को भी लज्जित होने की कोई बात नहीं थी।

और व्यवहार आश्चर्यजनक था अटल'दा का।

अनुष्ठान के अन्त तक अटल'दा चुपचाप मुँह बन्द किये हुए सब कुछ सहते रहे। इसीलिए सहन किया कि इसके बाद ही उसकी मुक्ति का उपाय है। यही तो सबसे बड़ी सज़ा नहीं है। उसके बाद कलकत्ते से लापता हो जाना होगा। अगर कुछ ग़लती कर दी तो उसकी जवाबदेही उससे कोई नहीं माँगेगा? कोई नहीं लेगा कैफ़ियत। कैफ़ियत देने के लिए परिचित समाज में वह लौटेगा ही नहीं। फिर उसे कौन ढूँढ़ पायेगा?

ब्रजेन बाबू का जीवन भी तो वह जानता है। देश की स्वाधीनता के लिए जो झूठ बोला जाता है, वह झूठ नहीं होता। जीवन की तुलना में देश बहुत बड़ा है। पारिवारिक कर्त्तव्य से भी बड़ा है। पिता से भी बढ़कर है।

कन्या-पक्ष के लोग प्रसन्न होकर चले गये।

तब कुन्ती की नयी-नयी शादी हुई थी। शादी का मतलब आमूल परिवर्तन। वह आदमी जितने दिनों तक उसका गुरु था, जितने दिनों आदर्श चरित्र था—उतने दिनों तक कुन्ती की दृष्टि उसके प्रति दूसरी थी। लेकिन पिता की मौत के बाद उसने अटल'दा को दूसरे ही रूप में देखा। अब तक पिता ही उसके लिए एकमात्र पुरुष थे। लेकिन सारे पुरुष एक ही तरह के नहीं होते। इसका प्रमाण उसे पहली बार अटल'दा को देखकर मिला। अटल'दा दिन-भर क्या सोचा करते हैं?

कुन्ती पूछती—तुम क्या सोचते रहते हो हरदम ?

—कहाँ, कुछ भी तो नहीं सोचता।

कुन्ती के प्रश्न को टालने की कोशिश करता अटल'दा। अटल'दा को लगता कि जैसे वह पकड़ लिया गया। केवल कुन्ती के पास ही पकड़े जाने का सवाल नहीं, आसपास के टोले-मुहल्ले वालों की नजर में पकड़े जाने का सवाल है। बचपन से ही अटल'दा सबसे श्रद्धा और प्रेम पाता रहा है। सभी लोग उसकी प्रशंसा करते रहे हैं। बदनामी या कोई अफवाह कभी नहीं जुड़ी उसके नाम के साथ। उसका यश चारों ओर फैला हुआ था, पर इस यश के लिए अटल'दा को कोई मूल्य नहीं देना पड़ा। जो भी कुछ मिला, वह सहज ही मिला है। लेकिन इस सहजता में पाने के रास्ते में यकायक जैसे पहले-पहल किसी ने कोई बाधा खड़ी कर दी हो। इसके बाद ही उसे लगने लगा कि सभी जैसे उसपर सन्देह कर रहे हैं। जैसे सभी लोग इस बात को जानते हों, जैसे उसे श्रद्धा के आसन से उतारकर जमीन पर पटक देंगे। इस भय से वह लुक-छिपकर ही जाना पसन्द करते।

रास्ते में पुराने दोस्तों से भेंट होने पर उन्हें टालने की कोशिश करते। कभी कोई पूछ ही बैठता—क्यों भाई, क्या खबर है ? क्या कर रहे हो आजकल ?

तो अटल'दा टालने की कोशिश में कहता—बड़ा काम है भाई, चलूँ।

—कौन-सा ऐसा काम है तुम्हारा, मैं भी तो जरा सुनूँ।

—अरे भाई, काम का भी कोई अन्त है। अटल'दा दूसरी ओर भाग-कर जैसे अपना पिंड छुड़ाता।

सचमुच ही अटल'दा का क्या भला एक ही काम है ? हम लोगों की तरह साधारण आदमी तो है नहीं अटल'दा। वह तो 'जीनियस' है। असाधा-रण है। क्या औरों की तरह उसे बैठकबाजी करते पाया जा सकता था ? जितना ही अटल'दा को लोगों से सम्मान मिलता, उतना ही वह डरते रहते। यदि सब लोग उसे पकड़ लें, तो ? लेकिन यह तो सबकी आँखों में धरे उनकी श्रद्धा पाने का सीधा मार्ग अटल'दा ने अपना लिया। भलों के आमने-सामने खड़ा होकर उनका सम्मान पाने की क्षमता भी जैसे लोप हो गयी उसमें।

कुन्ती कहती—सारे दिन कहाँ थे आज ? उत्तर मिलता—काम में व्यस्त था।

—क्या काम था ?

—एक काम हो तो बताऊँ ? आज फिर बड़ानगर जाना पड़ा।

—लेकिन रुपये तो लाये होंगे ? तुमने कहा था न ? मकान का दो

महीने का किराया बाक़ी पड़ा है।

अटल'दा सब झूठ कहता। सारा दिन या तो सुनसान घास के मैदान में बिताता या किसी खाली बेंच पर बैठकर आकाश-पाताल एक करता रहता।

मन में सोचता—यह क्या हो गया ? क्या सब कुछ व्यर्थ है ? अगर उसके पास रुपया नहीं था, तो क्यों ब्रजेन बाबू से वादा किया उसने ? वह भी क्या दूसरों की आँखों में अपने को सज्जन प्रमाणित करने का आडम्बर था ?

एकाध बार मन में आता कि नौकरी की कोशिश की जाए। उसे तो हाथों-हाथ नौकरी मिल जायेगी। लेकिन तब तो वह सबकी तरह साधारण आदमी हो जायेगा। सभी की तरह वह यदि एक ही पंक्ति मे खड़ा हो जायेगा, तो क्या उसे लोग पहले की तरह श्रद्धा-भक्ति से देखेंगे ? श्रद्धा-भक्ति भी न ही सही, वे यह तो कह ही सकते हैं कि इतना पढ़-लिखकर अटल'दा जो बना है, वह तो हम बिना पढ़े-लिखे ही बन गये हैं। अटल'दा और हम लोगों में फ़र्क़ ही क्या है ?

सारा-सारा दिन मैदानों में घूमकर परेशान हो उठता। समूचे कलकत्ता, बंगाल और भारतवर्ष में लोगों की नज़रों में अटल'दा जैसे तुच्छ हो गया है। जैसे पहले की तरह अब उससे कोई ईर्ष्या नहीं करता। यह भी एक यन्त्रणा है, एक दण्ड है, एक प्रचण्ड शाप है।

रात को थोड़ी देर के लिए कुन्ती के घर हाज़िर होता तो कुन्ती वही एक ही सवाल पूछती—नौकरी मिली तुम्हें ? रुपये लाये ?

नौकरी का नाम लेते ही अटल'दा को गुस्सा चढ़ जाता।

नौकरी ? मैं नौकरी करूँगा ? नौकरी करनी होती तो मैं पहले ही कर सकता था। तुम क्या समझती हो कि मैं साधारण आदमियों की तरह नौकरी करने के लिए पैदा हुआ हूँ ?

पहले-पहल तो कुन्ती श्रद्धा सहित बातें करती, क्योंकि अभी उसका मोह भंग नहीं हुआ था !

कुन्ती कहती—लेकिन नौकरी नहीं करने पर कैसे काम चलेगा ?

अटल'दा कहता—मेरे साथ जब तुम्हारी जिन्दगी जुड़ गयी है, तो जैसे मेरा काम चलेगा, वैसे तुम्हारा भी चलना उचित है।

—लेकिन मेरा न भी चले, तो कुछ नहीं, पर तुम्हारा भी तो नहीं चल रहा है।

अटल'दा कहता—मेरे बारे में तुम्हें सोचना नहीं चाहिए।

—लेकिन मेरा भी भला कैसे चलेगा ? वह भी तो तुम्हारे ही सोचने

की वात है। यदि तुम नही सोचते तो मुझसे, विवाह क्यों किया ?

इस बात का जवाब देने मे जैसे अटल'दा का सारा धैर्य हिल उठता, लेकिन वह अपने को सँभाल लेता। एकाध बार मन में आता भी कि सब कुछ खोलकर बता दे कि कुन्ती कौन है ? क्या है उसका परिचय ? क्यों विवाह किया है उसने ? यह सब कुछ साफ़-साफ बताकर हमेशा के लिए सम्बन्ध तोड ले। लेकिन यह केवल एक विचार मात्र होता।

वह फिर अपने को सँभाल लेता और चुप हो जाता। सारा विरोध अपने सिर-माथे ओढ़कर बादामतल्ले अपने घर चला आता। फिर अपने आत्म-पुरुष को खोजता—तब उसे बोध होता कि साधारण आदमी बनकर जीने के लिए तो वह इस दुनिया मे नही आया।

साधारण व्यक्तियो की तरह नमक-तेल-हल्दी-लकड़ी को लेकर सिर खपाना उसका काम नही है। वह तो क्षण-जन्मा पुरुष है। स्वामी विवेकानन्द की तरह वह भी गृह-त्यागी है। दुनिया के लोगो की पसन्दगी मानने से उसका काम नही चलेगा ? अपने आदर्श तक पहुँचने में यह सब बाधाएँ तो आयेंगी ही। इन बाधाओ को दूर करने में ही उसका महत्व है और इन बाधाओं को पार करने मे ही उसका गौरव है।

मैंने पूछा—इसके बाद ?

अधीर बोस ने कहना शुरू किया—हम लोग जब मन ही मन अटल'दा की पूजा करते और सोचते रहते थे कि अटल'दा कितने लडके-लडकियो को आदमी बनाने मे व्यस्त हैं, हम लोग जब मन ही मन यह विश्वास कर रहे होते कि अटल'दा अपनी तपस्या मे मग्न हैं—उस समय अटल'दा पागलों की तरह इधर-उधर घूमता रहता। तब अटल'दा किसी को बिना जताए गुप-चुप शादी कर चुका था और उसी गुप-चुप की गई शादी की परेशानी को मन मे रखकर सुलगते हुए भूसे की आग-सा वह [illegible] हत्या कर रहा था।

कुन्ती कहती—अगर तुम मेरा पालन-पोषण नही करोगे तो मैं कहाँ जाऊँगी ?

अटल'दा उत्तर देता—क्यो ? तुम जहाँ हो, वहीं रहो।

—और तुम ?

—तुमने विवाह किया है तो क्या इसका यह अर्थ है कि मैं तुम्हारा नौकर हूँ, मेरी कोई अपनी स्वाधीन सत्ता नही है ?

—किसने कहा कि नही है ? मैंने क्या यही कहा है ?

—तुम्हारे कारण मेरी पढ़ाई-लिखाई, [illegible]

समाप्त हो गयी—अगर ऐसा करोगी, तो मैं कुछ ही दिनों में पागल हो जाऊँगा।

—लेकिन उसके पहले तो मैं ही पागल हो गयी हूँ—मेरे दिमाग़ का अव कुछ ठीक नहीं हैं। कुन्ती कहती।

—अगर तुम पागल हो गयी हो, तो मुझे क्यों वेकार में पागल वना रही हो ?

—मेरे लिए क्या तुम्हें तनिक भी चिन्ता नहीं होती ? मैं क्या तुम्हारी कोई नहीं हूँ ? क्या तुमने अग्नि को साक्षी रखकर मुझसे विवाह नहीं किया ? वोलो, अपने दिल से पूछो तो—

अटल'दा थोड़ी देर चुप खड़ा रहा। एक क्षण को उसकी आँखें आश्चर्य से फैल गयीं। लेकिन तुरन्त ही उसने अपने को सँभाल लिया।

—मुझे थोड़ी शान्ति नहीं दे सकतीं ?

—शान्ति ? कुन्ती हँस पड़ी, लेकिन वड़ी ही म्लान हँसी। फिर वोली—क्या तुमने मुझे एक क्षण को भी शान्ति दी है ?

—तुम नहीं जानतीं कि तुम्हारे लिए मैंने कितना वड़ा त्याग किया है ?

—क्या त्याग किया है तुमने ? ज़रा सुनूँ तो, तुम्हारे त्याग की फ़हरिस्त।

—इसका मतलव ? तुमसे शादी करने के पहले मुझमें कितनी शक्ति थी, जानती हो ? मेरा कितना सम्मान था, पता है ? मैं कितना व्यस्त रहता था, सभी लोग मुझे कितनी श्रद्धा करते थे, जानती हो ?

कुन्ती वोली—ख़ूव अच्छी तरह जानती हूँ। मैंने भी कभी वहुत सम्मान दिया था तुम्हें।

—लेकिन, वह सम्मान अव कहाँ चला गया ? क्यों मैं अव लोगों के सामने सिर ऊँचा करके पहले की तरह नहीं चल पाता ? वोलो, क्यों नहीं चल पाता ?

—कहूँ ? सच वता दूं ? कुन्ती वोली।

—हाँ, वोलो।

कुन्ती वोली—दरअसल तुम्हारे भीतर ही खोखलापन था। तुममें कोई भी गुण नहीं था। सभी ने तुम्हें 'महान्-महान्' कहकर 'महान्' वना दिया था। केवल परीक्षा में फ़र्स्ट आने के सिवाय और कोई भी गुण नहीं था तुममें। तुम चाहते थे कि सभी लोग तुम्हें गुरु-रूप में पूजें—लेकिन क्या गुरु होना इतना आसान है ? उसके लिए वहुत त्याग करना पड़ता है, वहुत कष्ट भोगना पड़ता है। तुम विना कुछ किये ही सवके सिर पर चढ़ जाना

चाहते थे।

ये बातें अटल'दा को अच्छी नहीं लगीं। उसने कहा—मेरे बारे में तुम्हारा यही खयाल है बस?

—तुम मेरी राय जानना चाहते थे—इसी से मैंने कहा। तुम्हारी रज़ामन्दी से ही तो मैंने बताया है।

—तो ठीक है। अगर तुम मुझे श्रद्धा नहीं कर सकतीं तो मुझे छोड़ दो। क्यों मुझे तकलीफ दे रही हो?—ऐसा कहकर अटल'दा चलने ही को था कि पीछे से यकायक कुन्ती ने उसका हाथ पकड़ लिया।

—कहाँ जा रहे हो?

—जहाँ मेरी खुशी।

—जहाँ तुम्हारी खुशी हो वहाँ जाने से तो नहीं चलेगा। मत भूलो कि तुमने मुझसे विवाह किया है···

—विवाह किया है तो क्या मेरी कोई भी इच्छा नहीं रहेगी—क्या यह ज़रूरी है?

—नहीं। कुन्ती ने यह कहकर उसका हाथ और ज़ोर से पकड़ लिया।

—इसका मतलब?

—इसका मतलब तुम अच्छी तरह जानते हो। मैं तुम्हारी सहधर्मिणी हूँ। मुझे छोड़कर मुझसे अलग तुम्हारा कोई अस्तित्व नहीं है। यदि ऐसा है तो कानून रोकेगा।

— तुम मुझे कानून बता रही हो?

कुन्ती बोली—पुलिस के कानून के अलावा और भी क़ानून हैं इस दुनिया में। अब अगर ईश्वर को मानते हो तो उसका भी क़ानून है, जिसके विधि-विधान में पृथ्वी चलती है, सूर्य-चन्द्रमा-ग्रह-नक्षत्र चलते हैं, वही कानून तुम्हें रोकेगा।

अटल'दा ने कहा—मैं वह कानून नहीं मानता।

—तुम नहीं मानते यह कौन सुनेगा? और मैं ही क्यों सुनूँगी?

अटल'दा और बरदाश्त नहीं कर सका।

—तुम सुनोगी या नहीं सुनोगी—इसे लेकर मैं अपना दिमाग़ क्यों खराब करूँ—मैं तो चला···यह कहकर वह कुन्ती का हाथ एक झटके से छुड़ाकर दरवाज़े के बाहर जा ही रहा था कि कुन्ती ने उसके कुर्ते का छोर पकड़ लिया। खींचे जाने पर कुर्ता काफ़ी फट गया।

अटल'दा खड़ा हो गया। फटे हुए कुर्ते की ओर एक बार देखा। इसके बाद सीधा बाहर जाकर अँधेरे में रास्ते की ओर बढ़ गया।

कुर्ता खींच कर कुन्ती को भी कुछ बुरा-सा लगा, पर जब उसे होश

आया तो अटल'दा ग़ायब हो चुका था।

यह थी कुन्ती के वैवाहिक जीवन की पहली घटना और अटल'दा के जीवन में भी पहली ही थी। लगातार सभी से श्रद्धा-स्नेह-सम्मान पाते-पाते अटल'दा का अहंकार वास्तव में बढ़ गया था। उसे लगता था कि वह क्यों किसी के आगे छोटा बनेगा? वह क्यों दूसरे की आलोचना का पात्र होगा? वह कोई अन्याय नहीं कर सकता। उससे अगर कुछ ग़लती भी होगी, तो भी उसे सही मान लिया जायेगा। अटल'दा तो जीनियस है। अटल'दा की ग़लती, प्रतिभा की ग़लती है। अटल'दा की भूल, जीनियस की भूल है। दरअसल वह भूल ही नहीं है।

इसके बाद वह निश्चित घड़ी भी आ गयी।

निमन्त्रण-पत्र छप चुके थे, बाँटे भी जा चुके थे। अंधेरे घर में सारी रात जागता रहा अटल'दा। आखिरी क्षण में वह इस आयोजन को व्यर्थ करके चल देगा। ऐसी जगह भागेगा जहाँ उसे कोई नहीं पहचानेगा। जहाँ जाकर वह अपने अतीत को पोंछकर फेंक सकेगा, जहाँ फिर वह नये सिरे से अपनी ज़िन्दगी शुरू करेगा।

चिन्ता करते-करते रात बीत जाती और अटल'दा सोचता ही रहता।

आशुबाबू पूछते—तुम्हारा मुखड़ा ऐसा मुरझाया क्यों जा रहा है?

लेकिन अटल'दा की ओर से कोई उत्तर न पाकर आशुबाबु भयभीत हो जाते। बस किसी तरह एक दिन कट जाये तो विपत्ति से उबर जायें।

अपनी स्त्री के पास जाकर बोले—क्यों, मैं तो कुछ समझ नहीं पा रहा हूँ—अटल का चेहरा क्यों उतरा-उतरा-सा है?

चाचीजी कहतीं—मैं तो कुछ नहीं समझ पाती।

—तुमसे कुछ कहा-सुना है उसने?

—मुझसे क्या कहेगा वह?

आशुबाबू बोले—कई दिन से कहता आ रहा है कि विवाह नहीं करूँगा···

—वैसा तो सभी लड़के ही कहते हैं।

—नहीं, मुझे थोड़ा डर लगता है। सोचता हूँ कहीं अन्त में सज्जन व्यक्तियों के सामने बेइज़्ज़ती न उठानी पड़े। अटल तो शुरू ही से ज़िद्दी है।

लेकिन अटल कई दिन तक घर से बाहर ही नहीं निकला। आशुबाबू अवाक् रह गये। जो लड़का दिन-रात बाहर घूमता रहता वही घर से हिलेगा भी नहीं, यह कौन सोच सकता था।

सारे दिन बाजार से सामान आता रहा। अटल'दा के विवाह में काम करने वालों की कमी नहीं। आशुबाबू जो कुछ कहते—हम लोग वैसा ही करते। आटा-मैदा-घी और कितनी सारी चीज़ें हम लोग खरीद लाये। घर रिश्ते-नातेदारों से भर गया। शहनाई का आर्डर दे दिया गया।

लेकिन अटल'दा तमाम दिन अपने घर में ही बैठा रहा।

हम लोगों को देखकर पहले बातचीत करता था। उस दिन बात भी नहीं की। उसका चेहरा जैसे सूख गया था।

हम लोगों ने पूछा भी, क्यों, तुम्हारी तबीयत खराब है क्या अटल'दा?

—नहीं। अटल'दा ने भारी आवाज़ में कहा।

कौन जाने, पर हम लोगों को लगा कि शायद विवाह के दिन सभी के चेहरे ऐसे सूख जाते हों—उपवास जो करना पड़ता है। उपवास करने पर शरीर तो सूखेगा ही।

—तुम्हारा काम-काज कैसे चल रहा है अटल'दा? मैंने पूछा।

—ठीक-ठाक है। अटल'दा ने कहा।

ऐसा लगा कि हम लोगों के साथ बातचीत करना उसे अच्छा नहीं लग रहा था।

फिर मैंने पूछा—तुम्हारा मुखड़ा ऐसा गम्भीर-गम्भीर क्यों लगता है?

अटल'दा ने जबरन हँसने की कोशिश की। लेकिन वह जैसे अटल'दा की हँसी नहीं थी। रोने के बाद लोगों के मुँह पर जैसी हँसी आ जाती है, वैसे ही थी वह हँसी। हम सभी अवाक् हो गये।

हमारे सवाल का जवाब न देकर अटल'दा ने सिर्फ इतना ही कहा—बड़ी परेशानी में पड़ा हूँ···

—क्यों? तुम्हें कैसी परेशानी है अटल'दा?

—परेशानी क्या कम होती है? कितना काम चारों ओर पड़ा हुआ है, लेकिन कुछ भी नहीं कर पा रहा हूँ।

हम लोग तो तब भीतर की हालत नहीं जानते थे। हम तो नहीं जान पाये थे कि अटल'दा के मन में तूफान चल रहा है—हम जानते नहीं थे कि अटल'दा ने चोरी से विवाह कर लिया था और अब लुक-छिपकर कुन्ती को सूचित किये बिना ही यहाँ प्राण बचाने आया है। अटल'दा ने सोचा था कि कुन्ती कुछ भी नहीं जान सकेगी। बस यहाँ से चुपचाप विवाह करके यहीं दूर खिसक जायेगा वह। किसी अनजान-अपरिचित स्थान में, नयी बहू के साथ रहता हुआ, नौकरी करता हुआ, नयी जिन्दगी शुरू करेगा।

भूल आदमी ही करता है। मनुष्य से ही भूल करना सम्भव भी है, देवता के लिए नहीं। लेकिन आज समझ पा रहा हूँ कि यह अटल'दा की भूल नहीं थी—यह उसकी मूर्खता थी। सभी की नजरों में महान बनूँगा, सभी का श्रद्धा-भाजन रहूँगा, सभी के सिर पर छाया रहूँगा, यह विचार ही तो मूर्खता है।

सचमुच ही तो क्यों हम लोगों ने अटल'दा को इतनी ऊँचाई पर चढ़ा दिया था? यह तो हमारा ही दोष था। इसलिए अटल'दा के बारे में सोचने पर अफ़सोस करना ठीक है। बचपन से ही मुहल्ले के बच्चों, माँ-बाप सभी से आदर पाकर अटल'दा की यह हालत हुई थी। सभी की नजरों में गिर जाने के डर से ही उसने ऐसी मूर्खता कर दी।

शाम को बाराती के रूप में जाने के लिए हम सभी तैयार हो चुके थे।

अधीर बोस ने कहा—वह सब तो तुम लोग भी जानते हो। आशुबाबू को जो डर था, वैसा कुछ भी नहीं हुआ। अटल'दा इतनी सहजता से सारे काम करने को राजी हो जायेगा, ऐसी कल्पना नहीं की थी उन्होंने। जो अटल'दा हमेशा खद्दर पहनता था, उसी ने उस दिन रेशमी कुर्ता पहना, जरीदार किनारे की धोती पहनी, दूल्हे के रूप में सज-धजकर कार पर बैठकर शादी करने चल दिया।

तब भी हम लोगों में से किसी को कोई सन्देह नहीं हुआ था। हम लोगों ने तो यही समझा था कि विवाह जीवन का एक स्मरणीय अध्याय है—इसीलिए शायद थोड़ी लज्जा, थोड़ा संकोच आ जाता है दूल्हे में। वह सहनशील बन जाता है। लोग उसे जो कुछ भी करने को कहते हैं, वह निर्विवाद करता है उस दिन। जो अटल'दा हम लोगों को इतना उपदेश देता आया है, स्वामी विवेकानन्द के ब्रह्मचर्य की बात बताता आया है—उसी अटल'दा का यह व्यवहार देखकर हम लोग मन ही मन आश्चर्य-चकित हो उठे थे। फिर भी यही सोच-सोचकर सन्तोष करते थे कि अटल'दा भी तो सामाजिक मनुष्य है। क्यों नहीं करेगा वह विवाह? इसमें ग़लती कहाँ है? महात्मा गांधी, देशबन्धु चित्तरंजनदास, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, रामकृष्ण परमहंस से लेकर प्रेसीडेण्ट राजेन्द्र प्रसाद तक सभी ने तो किया है। फिर भी अटल'दा के विवाह करने से हम क्यों इतने उदास-हताश हो उठे थे?

हो सकता है कि तब यह बात इसलिए मन में आयी होगी कि अटल'दा दूल्हे की पोशाक में मूर्ख की तरह दिखाई पड़ रहा था। चेहरे की दृढ़ता तथा चरित्र का तीखापन न जाने कहाँ चला गया था। शायद सभी दूल्हे ऐसे ही मूर्ख लगते हैं। दुनिया में जितने भी दूल्हों को देखा है, उनके

चेहरा को याद करने की कोशिश करने लगा।

लेकिन आश्चर्य की बात है, तब भी हम कल्पना नहीं कर सके कि अटल'दा किस कारण से परेशान है। हम यह सोच नहीं पाये कि अटल'दा की एक दूसरी बहू भी है। हम तो स्वप्न में भी ऐसा नहीं सोच सकते थे कि एक बहू के रहने पर भी दूसरी लड़की से विवाह करने जाकर, अटल'दा अपने पैरों में खुद ही कुल्हाड़ी मार रहा है।

लेकिन क्या यह मूर्खता है? कभी-कभी ऐसा लगता है कि यदि यह मूर्खता ही थी, तो अटल'दा इतना परेशान क्यों हुआ था? मूर्ख लोग तो बेपरवाह होते हैं। उनमें विचार और विवेक नहीं होता, तब?

तब शायद अटल'दा की बुद्धि भ्रष्ट हो गयी थी। बुद्धि-भ्रष्ट होने पर ही मनुष्य उसे किसी अपराध के द्वारा ढँकना चाहता है।

विवाह-मण्डली में हम लोग अटल'दा के पास ही बैठे हुए थे। हम लोगों ने देखा, अटल'दा को पसीना बहुत आ रहा था। सोचा कि शायद रेशमी कुर्ते के कारण ही ऐसा हो रहा होगा। अटल'दा को पसीने में तर-ब-तर भीगते देखकर एक आदमी ने उसके सर के ऊपर पंखे को पूरी स्पीड में खोल दिया। तब भी अटल'दा का पसीना नहीं रुका।

अटल'दा को इतना पसीना आते देखकर हम सभी आश्चर्यचकित हो उठे थे। अटल'दा तो साधारण आदमी नहीं। वह क्यों हम लोगों की तरह असहाय अनुभव कर रहा है अपने को?

मुझे बुलाकर अटल'दा ने कहा—अरे, सुन तो, मुझे एक गिलास पानी देने को तो कह दे किसी से।

—जल पियोगे तुम? आज क्या तुम्हें कुछ खाना-पीना चाहिए?

—छोड़ उसे, मुझे बड़ी तेज प्यास लगी है।

मैं भला किसे जल लाने को कहता? आसपास कन्या-पक्ष के कई आदमी घूम-फिर रहे थे। उन्हीं में से एक को पानी लाने के लिए कहा। इसके बाद उसने पानी दिया या नहीं, याद नहीं, लेकिन दुबारा उससे भेंट नहीं हुई। यकायक सब लोगों को खाने के लिए बुलावा आ गया और हम लोग गोल बाँधकर खाने के लिए चल दिये।

इसके बाद कब कन्या-पक्ष वाले दूल्हे को लिवा गये, कब वरण हुआ, कुछ याद नहीं। हम लोग तो गर्मागर्म पूरियों के साथ बैंगन-भाजा (तले बैंगन) खा रहे थे, गर्मागर्म फिश-फ्राई खा रहे थे, चिंगड़ि मछली की मलाई-करी खा रहे थे, पुलाव खा रहे थे कि अचानक उस तरफ हल्ला-गुल्ला शुरू हो गया। हम लोग भोजन छोड़कर विवाह-मण्डप की ओर दौड़े तो एक अद्भुत काण्ड हो रहा था।

—इसके बाद ?

अबीर बोस ने कहा—इसके बाद तो तुम लोग सभी कुछ जानते हो। इतने दिनों में सारी बातें साफ हो गयीं।

तभी से असल में अटल'दा जैसे नहीं रह गया। अटल'दा के जीवन का सूर्य अस्त हो गया था। बहुत दिनों बाद समझ पाया कि अटल'दा का अध:पतन ऐसे क्यों हुआ।

हो सकता है कि उस दिन विवाह के समय ही अटल'दा को जो डर था, वही हुआ—उसीसे अटल'दा को इतना पसीना आ रहा था, इतनी प्यास लग रही थी।

विवाह तो बिना किसी झंझट के समाप्त हो गया था। लेकिन इसके बाद क्या हुआ—नहीं जानता। जिस दिन अटल'दा को गैरहाजिर समझकर हमने सोचा था कि वह राँची गया हुआ है, वही अटल'दा उस समय कुन्तीदेवी के घर में था, यह लोग हम कैसे सोच सकते थे।

तब डायरी नहीं लिखता था। इसीलिए सारी घटनाओं की तारीखें याद नहीं हैं। लेकिन अबीर बोस से सारी घटनायें सुनकर फिर से सब कुछ याद आने लगा। चिट्ठी के ऊपर तो राँची ही लिखा था। राँची से लिखा था अटल'दा ने—'बंगालियों की रीढ़ की हड्डी टूट गयी है। उसे ठीक करना होगा। यह नहीं करने पर हमारी जाति फिसड्डी रह जायेगी। और देशों के लोग धड़ाधड़ आगे बढ़ते जा रहे हैं। तुम लोग मनुष्य हो। कथनी और करनी में एक होना होगा। मैंने बाहर आकर देखा है, यह लोग हमारी तरह निष्ठावान या शक्तिशाली न भी हों, पर उद्यमी हैं। इनके बीच एकता है। जबकि हम बंगालियों में एकता का अभाव है। मैं लौटकर आने पर क्लब में बैठकर सब बताऊँगा। हमें नये सिरे से सोचना होगा। हमारी शिक्षा ही यदि सार्थक नहीं हुई तो जिन्दगी में सब कुछ बेकार है।'

ऐसी ही कितनी ही बातें लिखी थीं अटल'दा ने। आज इतने दिनों के बाद सब ताजा हो उठा है। यह चिट्ठी किसने लिखी थी ? जो अटल'दा कुन्ती से विवाह करके अन्तर्द्वन्द्व में लहू-लुहान होकर आकाश-पताल एक कर रहा था—उस अटल'दा ने या उस अटल'दा ने जो हमारे बादमतल्ले का आदर्श युवक था, स्वामी विवेकानन्द का मन्त्र-शिष्य था ? एक ही आदमी में क्या दो विरोधी चरित्र एक ही साथ रहते हैं ?

अतीत में जो कुछ भी किया हो अटल'दा ने, चाहे जो भी भूल की हो, इतने दिनों बाद भी क्या उसका प्रायश्चित्त नहीं हुआ ?

कहाँ गये वे मंगलबाबू ? वही ब्रजेन बाबू ? बरिशाल में लार्ड साहब

की ट्रेन पर जिन्होंने बम फेंका था—जिन्हें गिरफ़्तार करने के लिए पुलिस ने दस हज़ार रुपयों की घोषणा की थी। क्यों अटल'दा उनका सारा भार अपने कन्धों पर उठाने गया? अगर भार ही उठाया था, तो अपने अहंकार को तभी क्यों नहीं समाप्त कर दिया? क्यों महान् होना चाहा अटल'दा ने? सभी के बीच क्यों नहीं अटल'दा ने अपने अहं को घुला-मिला दिया?

अघोर बोस के जाने पर अटल'दा की सारी कहानी आद्योपान्त सुनकर न जाने क्यों, मैं विस्मय-विमूढ़ हो उठा। अतीत का सारा जाना-सुना, सब देखा-ताका जैसे अनजाना और अनदेखा हो गया। उसी दिन शाम को इन्दुलेखा देवी के घर गया। सोचा कि जैसे भी हो, उनमें जवाबदेही तो पानी ही है।

इन्दुलेखादेवी अपने किराये के मकान के बाहरी कमरे में कई छात्राओं को पढ़ा रही थीं। मुझे आते देख बड़े ही विनीत और आदर के भाव से उठ खड़ी हुईं और बोलीं—आप? मुझसे कोई काम है क्या?

मैंने कहा—हाँ, ज़रा एकान्त होने से ठीक रहता।

इन्दुलेखादेवी बोलीं—आइए, बग़ल के कमरे में चलें। वहाँ कोई नहीं है।

बग़ल के कमरे में वे मुझे ले गईं। सभ्यता एवं रुचि-सम्मत सजावट की छाप थी। मुझे एक चौकी पर बैठने को कहकर वे खुद खड़ी ही रहीं।

बात कैसे शुरू करूँ, यह समझ में नहीं आया। इन्हीं के प्रति क्या हम इतनी श्रद्धा करते हैं? भुवनबाबू क्या इन्हीं को 'देवी' कहकर श्रद्धा जताते हैं? मुझे जैसे सन्देह हुआ।

हठात् मैंने कहा—मैं बहूबाज़ार गया था, एक बार अटल'दा को देखने।

मैंने सोचा था कि मेरी बात सुनकर इन्दुलेखादेवी भौचक्की हो जाएँगी, लेकिन नहीं, वे वैसे ही शांत स्वर में बोलीं—क्या देखा आपने?

मैंने कहा—ठीक नहीं हैं।

—लेकिन मैंने तो सुना है कि वे ठीक हैं।

इस बात का जवाब न देकर मैंने कहा—लेकिन आप उन्हें बचाना क्यों नहीं चाहतीं?

इन्दुलेखादेवी अब भौचक्की हो उठीं, बोलीं—मतलब?

मैंने कहा—क्या आप सचमुच उन्हें बचाना चाहती हैं या मार डालना चाहती हैं?

इन्दुलेखादेवी ज़रा-सा ठहरकर बोलीं—आप क्या कहना चाहते हैं, ठीक-ठीक समझ नहीं पा रही हूँ।

तब मैंने उन्हें स्पष्टतः बताना शुरू किया।

पेण्ड्रा रोड के सैनिटोरियम से उन्हें चंगा होते देखकर आपने यकायक रुपये भेजना क्यों बन्द कर दिया ? क्यों आपने चिट्ठी लिखी कलकत्ता चले आने को ? कलकत्ता में इतनी जगहों के बावजूद बहूबाज़ार के उस सीलन-भरे कमरे में उन्हें क्यों ठहराया ?

इन्दुलेखादेवीने हठात् मेरे मुंह से इतनी बातें सुनने की आशा नहीं की थी।

मैंने कहा—बोलिए न, जवाब दीजिए।

इन्दुलेखादेवी जैसे पत्थर हो गयीं।

कुछ देर बाद बोलीं—आपको ये सब बातें किसने बतायीं ?

मैंने कहा—किसी ने भी बतायीं हों, पर बातें सच हैं कि नहीं ? मैं आपका जवाब सुनने की ख़ातिर ही आया हूं। आपने लाखों रुपये अपने बीमार पति के लिए खर्च किया है और अभी भी खर्च कर रही हैं, यही आपने लोगों को बताया है। अपने पति के लिए आप सुबह से शाम तक मेहनत करती हैं, यही आपने सबको विश्वास दिलाया है। किन्तु किसके लिए इस झूठ का सहारा ले रही हैं ? इससे किसका भला होगा ? आपका या अटल'दा का ?—इन्दुलेखादेवी तब भी चुप ही रहीं। कोई उत्तर नहीं दिया उन्होंने। मैंने कहा—चुप मत रहिए, जवाब दीजिए। आज मैं इसका जवाब लेकर जाऊँगा। बाहर के लोग 'देवी' की तरह आपके प्रति श्रद्धा रखते हैं, मेरे लिए इसका असली उद्देश्य जानना अत्यन्त आवश्यक है।

इन्दुलेखादेवी ने इस बार आँखें नीची करके कहा—तो देख रही हूं कि आपने सब कुछ सुना है।

मैंने कहा - हाँ, सुना है, सुना है और विश्वास हो भी गया है। बस, सिर्फ़ आपके जवाब के लिए मैं यहाँ आया था। इसका कारण यह है कि अटल'दा हम लोगों के गुरु हैं।

—आपके गुरु ?

मैंने कहा—हाँ, इतने दिनों तक आपको नहीं बताया गया। लेकिन उससे कुछ आता-जाता नहीं। आप तो यह बताइए कि आप इतनी निष्ठुर कैसे हो सकीं ? लोग चूहे को अधमरा करके जैसे मज़ा लेते हैं, तमाशा करते हैं, आप भी अटल'दा के साथ वैसा ही व्यवहार कर रही हैं।

मैंने देखा कि इन्दुलेखादेवी की आँखों से आँसू गिर रहे हैं। उन्होंने जल्दी से उन्हें अपने आंचल से पोंछ लिया। इसके बाद बोलीं, आप क्या यही बात कहने आये थे यहाँ ?

—जी हाँ, और क्या बात हो सकती थी आपके साथ ?

—तब सुनिये, मैं अपने पति के अच्छे-बुरे के लिए अपनी मर्जी से जो भी करूँ—उसमें किसी को टाँग अड़ाने की कोई जरूरत नहीं है। मेरे पति का अच्छा या बुरा मेरे ही हाथ में है। आपका उसमें क्या मतलब है ?

उस शान-गम्भीर स्थिर मूर्ति के मुख से ये बातें सुनकर मैं स्तम्भित हो उठा।

इन्दुलेखा देवी फिर कहने लगीं—जिस दिन मेरे पति ने जानबूझकर मेरा सर्वनाश किया था, जिस दिन मेरे पति ने मेरे पिता को धोखा देकर मेरे साथ गठबन्धन किया था, उस दिन तो आप लोग मेरे पति के पास जवाबदेही करने नहीं गये ? उस दिन की उसकी निष्ठुरता देखकर आप लोग उसने घर धिक्कारने भी नहीं गये। तब आज क्यों आये हैं मेरे पास जवाबदेही चाहने ?

इस बात को सुनने के बाद तो मेरा गला रुँध गया।

इन्दुलेखादेवी बोलीं—मैं अपने पिता की समस्त सम्पत्ति की उत्तराधिकारिणी हुई थी—और वह सारी सम्पत्ति मैंने पति के रोग के पीछे खर्च कर दी। तो क्या उसके भले के लिए ?

—इसमें तो उसका खून कर देना ही बेहतर होगा।

—लेकिन उससे बदला तो नहीं लिया जा सकेगा। खून कर देने पर तो उसे सजा नहीं होती खून करना तो उसकी भलाई करना है।

—तब उसे बचा ही लीजिए।

—लेकिन यह भी तो वही बात हुई। तब भला उसे सजा कहाँ हुई ? बस, अधमरा करके रखना ही उसकी सजा है। वह आदमी जरा तो जान ले कि किसी स्त्री का सर्वनाश करने पर इतनी जल्दी पार नहीं पाया जा सकता। जरा तो उसे यह पता लगे कि सारी स्त्रियाँ मासूम और गऊ की तरह बेचारी नहीं होतीं। स्त्रियों का भी आत्म-सम्मान होता है, उनमें भी प्राण होता है—

इसके बाद रुककर बोलीं—बहुत रात हुई, आप घर जाइए। इस पाप का कोई प्रायश्चित नहीं, कोई जवाब नहीं है।

इसके बाद वहाँ नहीं रुका। हतवाक् होकर इन्दुलेखा के घर से चला आया। सोचा था, ये सारी बातें प्रचारित कर दूंगा। इन्दुलेखा के झूठे गौरव को मिट्टी में मिला दूंगा। लेकिन इसके बाद मुझे हठात् तीन वर्ष के लिए कलकत्ते से बाहर जाना पड़ा। और इतना व्यस्त रहना पड़ा कि भुवनबाबू को भी सूचित नहीं कर सका। सारे हिन्दुस्तान में घूमते फिरना ही मेरी नौकरी थी। लेकिन वह एक दूसरी कहानी है दूसरी भूमिका है उसकी। यहाँ उसकी कोई आवश्यकता नहीं।

एक दिन अचानक भुवनवावू को पत्र लिख वैठाऔर उसका उत्तर भी आया; पर वड़ा विचित्र था वह उत्तर। भुवनवावू ने लिखा था—आप सुनकर अत्यन्त दुखी होंगे कि हमारे स्कूल की इन्दुलेखा देवी ने अकस्मात् अपनी आत्महत्या करके यहाँ के निवासियों को मर्माहत कर दिया है। उन्होंने यह काम क्यों किया—कोई नहीं जानता है। उनकी जैसी टीचर पाना सौभाग्य की वात है। पुलिस इस भेद का पता नहीं लगा पायी। हम लोग भी कुछ नहीं समझ पा रहे हैं कि उन्होंने क्यों नियति के चरणों तले अपनी वलि दी? उनकी मृत्यु के वाद यहाँ हमारे स्कूल में विराट सभा हुई थी। सभी लोगों ने एक स्वर से कहा—उनकी तरह सती-साध्वी, पतिपरायणा स्त्री इस संसार में दुर्लभ है। हम सभी लोगों ने उनकी स्वर्गीय आत्मा की मुक्ति-कामना का प्रस्ताव भी पारित किया था। स्कूल में उनका एक तैल-चित्र टाँगने का प्रस्ताव स्वीकृत हुआ है। इस सूचना से आप अवश्य ही प्रसन्न होंगे, आशा करता हूँ।

इस पत्र को पाने के वाद मैंने अटल'दा की सूचना पाने के लिए भी भुवनवावू को पत्र लिखे, अधीर वोस को भी—लेकिन कोई भी उत्तर नहीं आया।

तीन वर्ष के वाद जव कलकत्ते वापस आया तो वहू वाज़ार के ठिकाने पर भी एक वार गया, पर वे लोग भी अटल'दा की कोई खवर नहीं दे पाये।

हो सकता है, अटल'दा इस संसार में अव न हों। कुन्तीदेवी भी न हों—लेकिन पृथ्वी के किसी भी अंश में यदि उनका अस्तित्व है तो मैं प्रार्थना करता हूँ कि एक क्षण-भर के लिए ही सही, अटल'दा शान्ति पायें।

यश सभी को नहीं मिलता और वहुत से तो पाकर भी जीवन में उपयोग नहीं कर पाते। लेकिन शान्ति इससे भी मूल्यवान है। जानता हूँ अटल'दा शान्ति नहीं चाहते, जिसके जन्म-लग्नमें ही तूफान हो, वह भला कहाँ से शान्ति पायेगा?

अटल'दा और इन्दुलेखा देवी की यह कहानी प्रणय-कथा है या प्रतिशोध की कहानी है या केवल निष्ठुर नियति का परिहास है—यह भी मैं इतने दिनों तक नहीं समझ सका। अभी भी नहीं समझ पा रहा हूँ। जैसी घटी, वैसी मैंने लिख दी। लेकिन यदि इस कहानी को पढ़कर आप लोगों को कोई खुशी, दर्द, आनन्द या वेदना मिली है तो मैं कृतार्थ हूँगा।